ज्योतिषी

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई

आचार्य श्री रजनीश साहित्य

हिंदी साहित्य	मू. रुपये
* प्रेम के फूल	५–००
* प्रेम और विवाह	१–५०
* मन के पार	१–००
* गीता दर्शन पुष्प–१	३–००
* समाजवाद से सावधान	४–००
* शून्य की नाव	३–००
* अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
* क्रांतिबीज	४–००
* संभोग से समाधि की ओर	५–००
* प्रभु की पगडंडियां	४–००
* सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
* बिखरे फूल	०–३५
* सिंहनाद	१–५०
* कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
* अज्ञात की ओर	२–००
* नये संकेत	२–००
* नये मनुष्यके जन्म की दिशा	०–७५
* शांति की खोज	२–००
* क्रांति के बीज सबसे बड़ी दीवार	०–३०
* अमृतकण	०–४०
* अहिंसा दर्शन	०–५०
* ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया (पंच महाव्रत)	४–००
* जिन खोजा तिन पाइयां (कुंडलिनी योग पर दिये गए प्रवचन)	२०–००
* सारे फासले मिट गये	१–२५
* प्रेम है द्वार प्रभु का	८–००
* सत्य की खोज	४–००
* संभावनाओं की आहट	६–००
* गहरे पानी पैठ	५–००
* मैं कहता आँखन देखी	५–००
	वार्षिक मूल्य
* ज्योतिशिखा (त्रैमासिक)	५–००
* युक्रांद (मासिक)	१२–००

English Literature

Original English Booklets

* Eternal Message	2-00
* The Dimensionless Dimension	2-00
* The Only Freedom	8-0(
* I am the Gate	7-00
* Turning IN	2-00
* Silent Music	2-00
* What is Meditation	3-00
* Meditation : A New Dimension	2-0(
* Beyond and Beyond	2·00
* Flight of the Alone to the Alone	2-50
* The Vital Balance	1-50
* Yoga : As Spontaneous Happening	2-00
* L. S. D.—A Shortcut to False Samadhi	2-00
* Gateless Gate	2-00

Translated From Original Hindi

* From Sex to Super Consciousness	6-00
* Towards the Unkrown	1-50
* Seeds of Revolutionary Thoughts	4-5(

(शेष कवर पेज ३ पर)

ज्योति शिखा

(आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का संकलन)

[जन्मोत्सव अंक]

मान्यक सम्पादक :

महीपाल

अरविन्द

अंक : २३ वां

दिसम्बर १९७१

मुखपृष्ठ सज्जा :

रंगरेखा स्टुडियो

प्रकाशन स्थल :

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड,
बम्बई–९

फोन : ३३९५६०–३२७६१८

●

मुद्रण स्थल :
स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई-१

●

एक प्रति : रु. १–२५
वार्षिक : रु. ५–००

●

अनुक्रम

		पृष्ठ
● स्नेह सुमन	महीपाल	५
● नाच उठता है रोआं रोआं		८
● यज्ञ		१७
● स्वयं के कर्म और विराट् शक्ति		२४
● हमारी वर्ण व्यवस्था		३०
● शंख गूंज उठा	ब्रह्मदत्त	५०
● जागते. . . जागते		६८
● निर्वाण उपनिषद् (समापन प्रवचन)		७७
● संकीर्तन मंडली : गतिविधि		९३

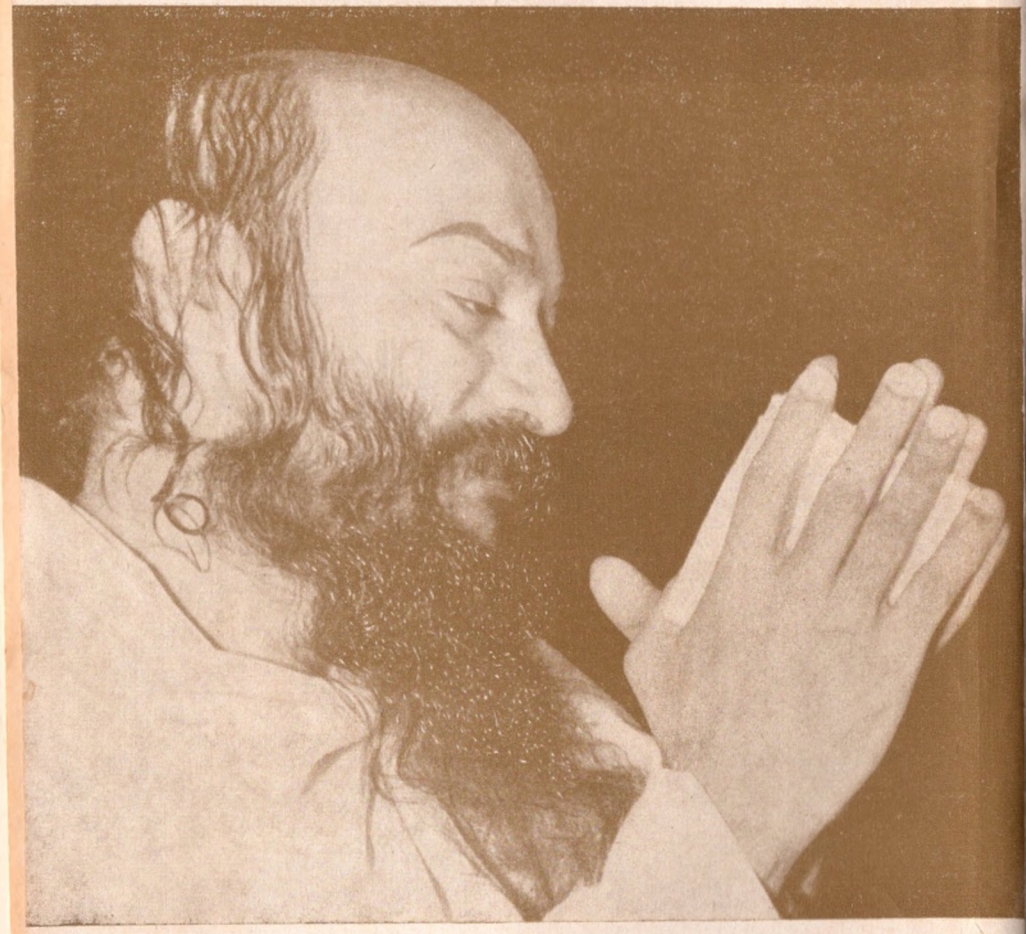

जन्मोत्सव :
११ दिसम्बर

'अत्ता हि अत्तनो नाथो
अत्ता हि अत्तनो गति'

११ दिसम्बर

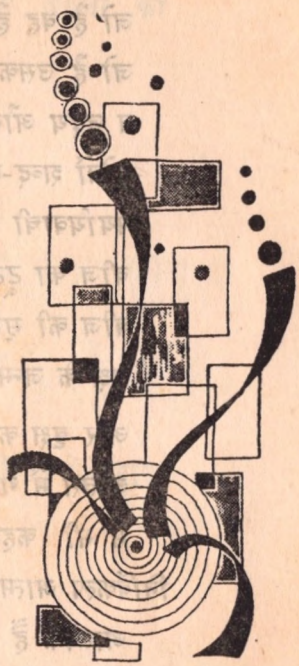

आचार्यश्री के एकतालीसवें जन्मोत्सव पर स्नेह सुमन

मेरे प्रिय,

प्रेम। आप यह जानकर आनन्दित होंगे कि आचार्यश्री का एकतालीसवाँ जन्मदिवस ११ दिसम्बर १९७१ है।

इस दिवस पर ज्योतिशिखा-परिवार उन्हें हार्दिक मंगल-कामनाएं अर्पित करता है।

यह वही परिवार है जो आचार्यश्री की देशनाओं पर पोषित हुआ है।

इसलिए जानता है कि जन्म-मरण जैसी कोई घटना नहीं।

जो है वह है।

जो है उसका न तो जन्म होता है और न मृत्यु।

न उदय और न अवसान।

दोनों शब्द-मात्र हैं।

पर्यायवाची हैं, मानो।

बीज का टूटना ही वृक्ष का जन्म है।

बीज की मृत्यु ही उसके जन्म की घटना है,

वृक्ष के जन्म की घटना।

और वृक्ष का जन्म ही बीज का पुनरुज्जीवन है।

अन्तस में गहरे उतरकर ही उन्होंने जाना है यह।

मैं भी कहता हूँ, हम शरीर नहीं, निरंजन, निर्विकल्प आत्मा हैं।

आलोक हैं।

ज्योति हैं।

आनन्द हैं।

अमृत हैं।

इसे खोजना नहीं—वरन् इसके लिए खो जाना और इसे पा लेना है।

समस्त भूत इसमें ही रहते हैं।

मैं ही सबका साक्षी और समस्त भूतों का गुह्य आशय हूँ।

मैं ही सबका प्रेमास्पद सच्चिदानन्द पूर्णात्मा हूँ।

स्वयं प्रकाशमान चेतन घनरूप हूँ।

आत्मारूपी स्तम्भ के आश्रय पर स्थित हूँ।

आचार्यश्री की अविच्छिन्न चिद्रूप आत्मा को नमस्कार है।

वे जो हैं सो हैं।

उन्हें नमस्कार है।

हम और आप अनन्त हैं,

हम और आप चिदात्मा हैं।

दोनों को नमस्कार है।

'नमस्तुभ्यं परेशाय नमो मह्यं शिवाय च।'

—महीपाल के प्रणाम

*

नाच उठता है फिर रोआं रोआं जब मोह गिर जाता है

ज्ञान का पहला आघात मोह पर होता है। ज्ञान की पहली चोट ममत्व पर होती है। या उल्टा कहें तो ममत्व के विदा होते ही ज्ञान की पहली किरण फूटती है, मोह के नाश होते ही ज्ञान के सूर्य का उदय होता है। यह दोनों घटनाएँ समकालिक हैं, साइमलटेनियस हैं। इसलिए दोनों तरह से कहा जा सकता है। प्रकाश के फूटते ही अंधकार विलीन हो जाता, या ऐसा कहें कि जहां अंधकार विलीन हुआ, हम जानते हैं कि प्रकाश फूट गया।

मोह क्या है? पहला मोह तो यह है कि मैं रहूं, गहरा मोह यह है कि मैं रहूं। जीवन की अभीप्सा—जीता रहूं, कैसे भी सही जिऊं जरूर। रहूं जरूर। मिट न जाऊं —'लस्ट फॉर लाइफ' जिजीविषा। जीने का मोह पहला और गहरा मोह है। शेष मोह उसके आसपास निर्मित होते हैं। यदि कोई मकान का मोह करता है तो मकान का कोई मोह नहीं करता, मकान का मोह — मैं रह सकूं ठीक से, मैं बच सकूं ठीक से, 'सर्वाइव' कर सकूं, उसी मोह का विस्तार है। कोई धन का मोह करता। धन का मोह अपने में व्यर्थ है। अपने में उसकी कोई जड़ नहीं। उसकी रूट, उसकी जड़ उस मैं के बचाये रखने में ही है। धन न होगा तो बचूंगा कैसे? धन होगा तो बचने की चेष्टा

कर सकता हूं। अगर और संक्षिप्त में कहें तो मोह मृत्यु के विरुद्ध संघर्ष है। पति पत्नी का मोह करता है, पत्नी पति का मोह करती है, बाप बेटे का मोह करता है। बेटा बाप का मोह करता है। वह सब 'सिक्योंरिटी मेजर्स' हैं, 'सर्वाइवल मेजर्स' हैं। बचने के उपाय हैं। मिट न जाऊं, बचूं सदा, जीने की ऐसी जो आकांक्षा है वह मोह का गहरा रूप है। फिर बाकी सब आकांक्षाएँ मोह की इसी आकांक्षा से पैदा होती हैं। कभी कभी हैरानी होती है। राह पर देखकर किसी अंधे, लंगड़े-लूले भिखारी को मन में सवाल होगा, किस लिए जीना चाहता है? अंग अंग गल गये हैं, किस लिए जीना चाहता है, कभी सवाल उठा होगा? उसी लिए, जिस लिए, हम जीना चाहते हैं। अंग गल जायं लेकिन जीने का मोह नहीं गलता। आंखें चली जायं, पैर टूट जायं, आदमी सड़ता हो फिर भी जीने का मोह नहीं पिघलता। कई बार बूढ़े कहते हुए सुनायी पड़ते हैं कि अब तो परमात्मा उठा ही ले, तो आप यह मत समझना कि वह सच ही उठ जाने को तैयार है। अगर आप सब मिलकर कोशिश करने लगें कि ठीक है, उठवाये देते हैं, तब आपको पता चलेगा कि वह जब यह कह रहे हैं कि अब तो परमात्मा उठा ही ले, तो वे सिर्फ एक शिकायत कर रहे हैं कि इस तरह जिन्दा रखने में कोई मजा नहीं, गहरे में मरने की आकांक्षा उनकी भी नहीं है।

मैंने सुनी है एक घटना, एक अरेबियन कहानी है। एक लकड़हारा रोज लकड़ी काटता है। लाकर गांव में बेचता है। बूढ़ा हो गया है। एक दिन लौट रहा है, सिर पर भारी बोझ है। सुबह से दोपहर हो रही है। पसीने से लथपथ है। लकड़ियां ढोता हुआ गांव की तरफ जा रहा है। कमर झुकी जाती है, बोझा सहा नहीं जाता। अचानक मन से निकला– हे परमात्मा, इससे तो अच्छा है, अब मौत से मिला दे। ऐसा होता नहीं, जैसा उस कहानी में हो गया। मौत कहीं पास से गुजरती थी और उसने सुन लिया। सोचा, बेचारा सच में तकलीफ में है। ले ही जाऊं। मौत आ गयी। मौत सामने आके खड़ी हुई। लकड़हारे से कहा–तुमने याद किया, मैं आ गयी। बोलो, क्या करूं? लकड़हारे ने कहा, नहीं और कुछ नहीं, सिर्फ़ जरा सिर से बोझा उतार दो। और किसीलिए याद नहीं किया, बोझा जरा सिर पर ज्यादा है, राह पर कोई दिखायी नहीं पड़ता है, इसे नीचे उतार दो। घबड़ा गया वह मौत को देखकर। जब पुकारा था तब यह सोचा भी नहीं था।

यह ख्याल रख लें, अगर परमात्मा हमारी सारी प्रार्थनाएँ सुन ले तो हम प्रार्थना करना सदा के लिए बन्द कर दें। नहीं सुनता है इसलिए किये चले जाते हैं। शायद इसीलिए नहीं सुनता, क्योंकि हम अपने ही खिलाफ प्रार्थनाएँ किये

चले जाते हैं। यदि वह पूरी कर दे तो हम फिर भी शिकायत करेंगे कि तुमने पूरी क्यों कर दी, हमारा यह मतलब थोड़े ही था ? जब एक आदमी कहता है, हे प्रभु, अब तो उठा लो, तो उसका मतलब यह नहीं है कि उठा लो। उसका मतलब है, इस भांति जिन्दा मत रखो, ढंग से जिन्दा रखो। सांकेतिक भाषा में बोल रहा है। कोई मरना नहीं चाहता। आप कहेंगे, कुछ लोग आत्मघात कर लेते हैं। निश्चित कर लेते हैं। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि आत्मघात कौन लोग करते हैं ? वे ही लोग, जिनका जीवन का मोह बहुत गहन होता—'डेन्स'। यह बात बहुत उल्टी मालूम पड़ेगी। एक आदमी किसी स्त्री को प्रेम करता है और वह स्त्री इन्कार कर देती है, वह आत्महत्या कर लेता है। वह असल में यह कह रहा था कि जिऊंगा इस शर्त के साथ, कि यह स्त्री मिले, यह कंडीशन है मेरे जीने की। उसका जीने का मोह इतना सघन है कि अगर ऐसा जीवन उसे नहीं मिलता तो वह मर जाता है। वह मर रहा है सिर्फ जीवन के अति मोह के कारण। कोई मरता नहीं वैसे। एक आदमी कहता है, महल रहेगा, धन रहेगा, इज्जत रहेगी तो जिऊंगा नहीं तो मर जाऊंगा। वह मर के यह नहीं कह रहा है कि मृत्यु पसन्द है। वह यह कह रहा है, जैसा जीवन था रहेगा, धनर हेगा, इज्जत रहेगी तो जिऊंगा नहीं तो मर जाऊंगा। वह मर के यह नहीं कह रहा है कि मृत्यु पसन्द है। वह यह कह रहा है, जैसा जीवन था वह मुझे नापसन्द था। जैसा जीना चाहता था वह जीने की आकांक्षा मेरी पूरी नहीं हो पाती थी। वह मृत्यु को स्वीकार कर रहा है ईश्वर के प्रति एक गहरी शिकायत की तरह। वह कह रहा है कि संभालो अपना जीवन, मैं तो और गहन जीवन चाहता था। जैसी मेरी आकांक्षा थी वैसा। एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता है, वह मर जाती है। वह दूसरी स्त्री से विवाह करके जीने लगता है। इसकी जीवन के प्रति ऐसी गहन शर्त नहीं है जैसी उस आदमी की, जो मर जाता है। जिनकी जीवन की गहन शर्तें हैं वे कभी कभी आत्महत्या करते देखे जाते हैं। और कई बार आत्महत्या इसलिए भी आदमी करता देखा जाता है कि शायद मरने के बाद इससे बेहतर जीवन मिल आय। वह भी जीवन की आकांक्षा है। वह भी बेहतर जीवन की खोज है। वह भी मृत्यु की आकांक्षा नहीं है। वह इस आशा में की गयी घटना है कि शायद इस जीवन से बेहतर जीवन मिल जाय। अगर बेहतर जीवन मिलता हो तो आदमी मरने को भी तैयार है।

मृत्यु के प्रति उन्मुखता नहीं है, हो नहीं सकती। जीवन का मोह है। जीवन के इस मोह की फिर बहुत शाखाएँ फैल जाती हैं। वे सभी चीजें जो जीने

म सहयोगी होती है, महत्वपूर्ण बन जाती हैं। इसलिए धन इतना महत्वपूर्ण है। लोग कहते हैं कि धन में कुछ भी नहीं रखा है। गलत कहते हैं। मोह का प्राण है वह। मोह की आत्मा धन में बसती है। इतना धन महत्वपूर्ण हो गया है? क्या लोग पागल हैं? नहीं, लोग पागल नहीं हैं। धन के बिना जीना बहुत कठिन है। जीने की आकांक्षा जितनी प्रबल है, धन पर पकड़ भी उतनी ही प्रबल होती है। धन पर प्रबल पकड़ सिर्फ जीने की प्रबल पकड़ की सूचना देती है। अगर महावीर या बुद्ध जैसे लोग सब धन छोड़कर चले जाते हैं, तो वे धन छोड़ के नहीं जाते। अगर गहरे में देखें तो जीवन का जो आग्रह हैं वह छूटने की वजह से धन छुट जाता है। फिर धन को करेंगे भी क्या बचाकर? कल हुआ जीवन तो ठीक है, न हुआ तो ठीक है। नहीं हुआ तो उतना ही ठीक है जितना हुआ तो ठीक है।

मुहम्मद रात सोते, तो सांझ घर में जो भी होता सब बांट देते। एक पैसा भी न बचाते। कहते, कल सुबह जिये तो ठीक है। और परमात्मा जिलाना चाहेगा तो कल सुबह भी इन्तजाम करेगा। आज इन्तजाम किया था, कल भी इन्तजाम किया था। जीवन भर का अनुभव कहता है कि अब तक जिलाना था तो उसने इन्तजाम किया है। कल भी भरोसा रखें। मुहम्मद कहते, जो आदमी तिजोरी सम्हाल के रखता है वह नास्तिक है। है भी। कहोगे, नास्तिक की बड़ी अजीब परिभाषा है। हम तो नास्तिक उसको कहते हैं जो भगवान को नहीं मानता। मुहम्मद नास्तिक उसको कहते हैं जो धन को मानता है। और ध्यान रखो, जो धन को मानता है वह भगवान को मान नहीं सकता। और जो भगवान को मानता है धन को मानना उससे ऐसे ही तिरोहित हो जाता है जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं। क्योंकि जो भगवान को मानता है वह अपने जीने का मोह छोड़ देता है। परमात्मा का जीवन ही उसका अपना जीवन है अब। तो मुहम्मद सांझ सब बांट देते हैं। मुहम्मद से अपरिग्रही आदमी पृथ्वी पर बहुत कम हुए और यह अपरिग्रह कई अर्थों में महावीर और बुद्ध के अपरिग्रह से भी कठिन है। क्योंकि महावीर और बुद्ध एकबारगी छोड़ देते हैं। छोड़कर बाहर हो जाते हैं। अपरिग्रह उनका इकट्ठा है। बाहर हो गये, बात समाप्त हो गयी। मुहम्मद इस तरह बाहर नहीं हो जाते, रोज सुबह से सांझ तक परिग्रह होता हैं। सांझ सब बांट देते हैं। रात अपरिग्रही हो जाते, सुबह फिर कोई भेंट कर जाता, तो फिर आ जाता। सांझ फिर बांट देते। इकट्ठा अपरिग्रह से छलांग लगानी सदा आसान है। एक क्षण में सब छोड़ देना आसान

है, क्षण क्षण जीवन भर छोड़ते रहना बहुत कठिन है। मगर दिखायी नहीं पड़ सकता ऊपर से इसलिए मुहम्मद को बहुत लोग तो मानेंगे कि अपरिग्रही हैं ही नहीं। पर मैं कहता हूं, उनका अपरिग्रह बहुत गहरा है। मरने के दिन बीमार थे तो चिकित्सकों ने मुहम्मद की पत्नी को कहा कि आज रात शायद ही कटे, तो उसने पांच दीनार बचा के रख लिये कि शायद दवा की जरूरत पड़ जाय। रात क्या भरोसा–दवा, चिकित्सक, कुछ भी इन्तजाम करना पड़े। बारह बजे रात तक मुहम्मद करवट बदलते रहे। लगा कि बहुत बेचैन हैं। लगा कि बहुत परेशान हैं। अन्ततः उन्होंने आँख खोली और अपनी पत्नी से कहा कि मुझे लगता है आज मैं अपरिग्रही नहीं हूं। आज घर में कुछ पैसा है। मत करो ऐसा, क्योंकि परमात्मा अगर मुझसे पूछेगा कि मुहम्मद मरते वक्त नास्तिक हो गये ? जिसने जिन्दगी भर दिया, वह एक रात और न देगा ? पत्नी ने कहा, तुम्हें पता कैसे चला कि मैंने बचाया होगा ? मुहम्मद ने कहा–तेरी आंखों की चोरी कहती है। तेरा डरापन कहता है। आज तू उतनी निर्भय नहीं है, जितनी सदा होती है। निर्भय सिर्फ अपरिग्रही ही हो सकता है, परिग्रही सदा भयभीत होता है। इसलिए परिग्रही के सामने बन्दूक लिये हुए पहरेदार खड़ा रहता है। वह उसके भय का सबूत है।

परिग्रही भयभीत होगा। जहां मोह होगा वहां भय होगा। भय मोहजन्य है, भय मोह का ही फूल है। कांटे जैसा है लेकिन है, मोह का ही फूल। खिलता मोह में ही है, निकलता मोह में ही है। ध्यान रखें, भय भी तो सही है कि मिट न जायें। मोह यह है कि बचाएँ अपने को, भय यह है कि मिट न जायं। इसलिए भय मोह के सिक्के का दूसरा हिस्सा है। जो आदमी निर्भय होना चाहता वह अमोही हुए बिना नहीं हो सकता। अभय, अमोह के साथ ही आता है। मुहम्मद ने कहा––तेरा डर कहता कि आज मोह से भरा हुआ है तेरा मन। तू आज मेरी आंखों के सामने नहीं देखती। कुछ तू ने छिपा के रखा है। निकाल ला और उसे बांट दे। बेचारी ने पांच दीनार छिपा कर रखे थे बिस्तर के नीचे, निकाल लिये। मुहम्मद ने कहा––जा सड़क पर, किसी को दे आ। पर उसने कहा, आधी रात, सड़क पर मिलेगा भी कौन ? मुहम्मद ने कहा– जिसने मुझे कहा है कि बांट दे, उसने उसको भी भेजा होगा जो लेने को मौजूद होगा। वह बाहर गयी, एक भिखारी खड़ा था। पैसे देकर वह भीतर आ गयी। भरोसा गहरा हुआ, ट्रस्ट बढ़ा। मुहम्मद ने आंखें बंद कीं, मुस्कुराए, चादर ओढ़ ली और श्वास छूट गई। जो जानते हैं वे कहते हैं, मुहम्मद उतनी देर

पांच दीनार बंटवाने को रुक गये थे। वह तड़पन यही थी कि कब वह पत्नी को राजी कर लें कि छोड़ दे दीनार। लेकिन पत्नी ने भी क्यों बचाये थे पांच दीनार ? वही जीवन का मोह है। हम भी बचाते हैं तो जीवन का मोह है। सब बचाओ जीवन के मोह में, मिट न जायें इस डर में।

ज्ञान की धारा जब बहती है तो सबसे पहले मोह को नष्ट करती है। मोह को इसलिए नष्ट करती है कि मोह अज्ञान है। अज्ञान को अगर हम समझें तो कहें अव्यक्त मोह है। और मोह को अगर ठीक समझें तो कहें व्यक्त अज्ञान है। जब अज्ञान व्यक्त होता है तो मोह की तरह फैलता है। व्यक्त अज्ञान, —'मेनीफेस्टेड इग्नोरेंस'। जब तक भीतर छिपा रहता है अज्ञान, तब तक ठीक है; पर जब वह फूटता और फैलता है हमारे चारों तरफ तब मोह का वर्तुल बनता है। फिर मेरे मित्र, प्रियजन, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मकान, धन-दौलत फैलता चला जाता है। और मोह के फैलाव का कोई अंत नहीं है। इनफिनिट है इसका विस्तार। अनंत फैल सकता है। चाँद–तारे भी मिल जायें तो तृप्त नहीं होगा। आगे भी चाँद तारे हैं, वहा भी फैलना चाहेगा। क्यों ? इतना अनन्त क्यों फैलना चाहता है मोह ? इसलिए फैलना चाहता है कि जहां तक मोह नहीं फैल पाता है वहीं से भय की संभावना है। जो मेरा नहीं है उसी से डर है। इसलिए सभी को मेरा बना लेना चाहता है। जो मकान मेरा नहीं है वहीं से खतरा है। जो जमीन मेरी नहीं वहीं से शत्रुता है। जो चांद–तारा मेरा नहीं है वहीं से मौत आयेगी। तो जहांतक मेरे का फैलाव है वहां तक मैं सम्राट हो जाता हूं, उसके बाहर मैं फिर भिखारी हूं। इसलिए 'मेरे' को फैलाता चला जाता है आदमी।

कहते हैं महावीर जैसा एक अद्‌भुत आदमी हुआ है यूनान में डायोजनीज। डायोजनीज नग्न खड़ा था। सिकंदर से उसने कहा, सिकंदर तू एक दफे यह भी तो सोच कि तू सारी दुनिया जीत लेगा तो फिर क्या करेगा ? क्योंकि दूसरी दुनिया नहीं है। कहते हैं सिकन्दर उदास हो गया। डायोजनीज खूब हंसने लगा। सिकन्दर ने कहा–मेरी मजबूरी पर हंसो मत। यह मुझे ख्याल ही नहीं आया कि अगर मैं पूरी दुनिया जीत लूंगा तो फिर क्या होगा ? और दूसरी तो दुनिया नहीं है ? अभी जीती नहीं है दुनिया, लेकिन जीतने के ख्याल से उदासी आ गयी। क्योंकि फिर मोह को फैलाने की और कोई जगह नहीं है। फिर क्या करूंगा। सिकन्दर पूछने लगा – लेकिन डायोजनीज तुम हंसते क्यों हो ? डायोजनीज बोला कि मैं हंसता इसलिए हूं कि तुझे पूरी दुनिया भी मिल जाय तो भी उदासी ही हाथ लगेगी। हमारे पास कुछ भी नहीं है और हम आनंद में

हैं। तेरे पास सब कुछ है और सब कुछ हो जाय तो भी तू दुख में ही रहेगा।

मोह दुःख के अतिरिक्त और कहीं ले जाता नहीं। अब ऐसा समझें--अज्ञान छिपा हुआ मोह है। अज्ञान प्रगट होता है तो मोह बनता है; मोह सफल होता है तो दुख बनता है असफल होता है तो दुख बनता है। इसलिए ज्ञान की पहली धारा का जब आघात होता है तो सबसे पहले मोह छूट जाता है, टूट जाता है, बिखर जाता है। जैसे सूरज की किरणें आयें और बर्फ पिघलने लगे ऐसे मोह का फ्रोजन बर्फ जो छाती पर रखा है वह ज्ञान की पहली धारा से पिघलना शुरू होता है। और जब मोह पिघल जाता है, जब मोह मिट जाता है तब व्यक्ति जानता है कि मैं जिसे बचा रहा था वह तो था ही नहीं। जो नहीं था उसको बचाने में लगा था, इसलिए परेशान था। जो नहीं है उसको बचाने में लगा हुआ आदमी परेशान होगा ही। जो है ही नहीं, उसे कोई बचायेगा कैसे? मैं हूं ही नहीं अलग और पृथक इस विश्व की सत्ता से। उसी को बचाने में लगा हूं, वही मेरी पीड़ा है। एक लहर अपने को बचाने में लग जाय फिर दिक्कत में पड़ेगी, क्योंकि लहर सागर से अलग कुछ है भी नहीं। उठी है तो भी सागर के कारण, मिटेगी तो भी सागर के कारण। नहीं थी तब भी सागर में थी, है तब भी सागर में है, नहीं हो जायगी तब भी सागर में होगी। लेकिन एक लहर अगर सोचने लगे कि मैं अलग हूं, बस, लहर आदमी हो गयी। अब लहर वही सब करेगी जो आदमी करेगा। अब लहर सब तरफ से अपने को बचाने की कोशिश करेगी। भयभीत होगी, मिट न जाय, डरेगी। इस डर की कोशिश में लहर क्या कर सकती है? बर्फ बन जाय तो बच सकती है। क्योंकि लहर तभी तक जिन्दा है जब तक बर्फ नहीं बनी। सब तरफ से सिकुड़ जाय, सख्त हो जाय, अहंकार फ्रोजन हो जाता है, अहंकार सिकुड़कर पत्थर का बर्फ बन जाता है। पानी नहीं रह जाता, तरल नहीं रह जाता। लिक्विड नहीं रह जाता, बहाव नहीं रह जाता।

अहंकार में बिल्कुल बहाव नहीं होता। प्रेम में बहाव होता है इसलिए जबतक अहंकार होता, तब तक प्रेम पैदा नहीं होता। यह भी ख्याल रख लें कि प्रेम और मोह बड़ी अलग बातें हैं। अलग ही नहीं, विपरीत। जिनके जीवन में मोह है उनके जीवन में प्रेम पैदा नही होता। और जिनके जीवन में प्रेम है वह तभी होता है जब मोह नहीं होता। लेकिन हम प्रेम को मोह कहते रहते हैं। असल में हम मोह को प्रेम कहके बचाते रहते हैं। धोखा देने में हमारा कोई मुकाबला नहीं है। बाप बेटे से कहता है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। पत्नी

पति से कहती है कि मैं तुझे प्रेम करती हूं। मोह है यह। इसलिए उपनिषद् कहते हैं कि सब अपने को प्रेम करते हैं। अपने को जो सहारा देता है बचने में, उसको भी प्रेम करते हुए मालूम पड़ते हैं, वह सिर्फ मोह है। प्रेम तो तभी हो सकता है जब दूसरा अपना ही मालूम पड़े। प्रेम तो तभी हो सकता है जब प्रभु का अनुभव हो, अन्यथा नहीं हो सकता है। प्रेम केवल वे ही कर सकते हैं जो नहीं रहे। बड़ी उल्टी बातें हैं। जो नहीं बचे वे ही प्रेम कर सकते हैं। जो हैं, बचे हैं वे सिर्फ मोह ही कर सकते हैं क्योंकि बचने के लिए मोह ही रास्ता है। प्रेम तो मिटने का रास्ता है, प्रेम तो पिघलना है। इसलिए प्रेम वह नहीं कर सकता जिसको अपने को बचाना है। इसलिए देखें कि जितना आदमी जीवन को बचाने की चेष्टा में रत होगा उतना प्रेमशून्य हो जायगा। तिजोरी बड़ी होती जायेगी, प्रेम रिक्त होता जायगा। मकान बड़ा होता जायगा, प्रेम समाप्त होता जायगा। दीन-दरिद्र के पास प्रेम दिखायी भी पड़ जायगा, समृद्ध के पास प्रेम की खबर भी नहीं मिलेगी। क्यों? क्या हो गया? असल में समृद्ध होने की जो तीव्र चेष्टा है वह भी मैं को बचाने की है। मोह को बचाने की है। मोह जहां है वहां प्रेम पैदा नहीं हो पाता। जब मोह पिघल जाता है तो व्यक्ति सच्चिदानंद से एक हो जाता है, फिर भेद नहीं रह जाता। भेद ही मोह है – भेद ही 'मैं हूं' इस घोषणा का, अभेद 'मैं नहीं हूं, तू ही है' इस घोषणा का है। लेकिन यह घोषणा प्राणों से उठनी चाहिए। तू ही है, यह घोषणा प्राणों से आनी चाहिए, कण्ठ से नहीं। यह घोषणा हृदय से आनी चाहिए, मस्तिष्क से नहीं। यह घोषणा रोयें रोयें से आनी चाहिए, खण्ड अस्तित्व से नहीं। उस क्षण में एकात्म फलित होता है, अद्वैत फलित होता है, दुई गिर जाती है। परम हर्षोन्माद का क्षण है वह 'अल्टीमेट एक्सटेसी' का। नाच उठता है फिर रोआं रोआं! गीत गा उठते हैं फिर श्वास के कण कण। लेकिन अनगाये गीत, आदमी के होठों से अस्पर्शित, जूठे नहीं। नृत्य अनजाना, अपरिचित। ताल-सुर नहीं, व्यवस्था संयोजन नहीं।

एक बाउल फकीर गुजर रहा है बंगाल के किसी गांव से। लोग इकट्ठे हो गये हैं, बाउल नाच रहा है। तम्बूरा बजा रहा है। हाथ ठीक पड़ते नहीं, व्यवस्था नहीं, सुर संगीत नहीं, पैरों में ताल नहीं। कोई पूछता है, नाचना ठीक से आता नहीं तो नाचते क्यों? बाउल फकीर कहता है, नाचता नहीं, नचाया जा रहा हूं। व्यवस्था और ताल-सुर की खबर कौन रखे। वह बचा ही नहीं जो व्यवस्था कर सकता था। अब तो बहा जा रहा हूं। लोग पूछते हैं, ये जो गीत गा रहे, इनका अर्थ क्या? वह बाउल कहता है, मुझे पता नहीं। मैं जब तक था तब तक ये गीत न थे। अब ये गीत हैं तो मैं नहीं हूं। अर्थ कौन बतायेगा? अर्थ जान लोगे उस दिन, जब गीत तुम्हारे भीतर भी पैदा हों

और तुम भी नाच सको। अनुभव ही अर्थ है। ज्ञान की धारा में टूटा मोह और व्यक्ति परम में निमज्जित हो जाता है। वही है परम अभिप्राय जीवन का, होने का। मोह है हमारे अहंकार की कुचेष्टा। मोह है, अपने ही हाथों, अपने ही आसपास परकोटा बनाना, बन्द करना अपने को सूर्य के प्रकाश से। तोड़ना अपने को, जगत के अस्तित्व से, बनाना अंधा अपने को प्रभु के प्रसाद से। अपने को छोड़कर जब कोई ज्ञान की धारा के निकट झुकता है तो धाका उसमें बह जाती है, और उसके भीतर सब मोह हट जाता है। मोह का तम हट जाता है। उस प्रकाश के क्षण में वह अपने को प्रभु के साथ एक ही जान पाता है।

यज्ञ

एक मुर्दा प्रतीक

किंतु धर्म का गहरा रहस्य

यज्ञ के सम्बन्ध में थोड़ा सा समझ लेना आवश्यक है। धर्म अदृश्य से संबंधित है। धर्म आत्यंतिक से संबंधित है। एक विचारक ने कहा है, 'दी अल्टीमेट कन्सर्न'। आत्यंतिक जो अंतिम है जीवन में गहरे से गहरा, ऊंचे से ऊंचा, उससे संबंधित है। जीवन के अनुभव जो शिखर अनुभव हैं, धर्म उनसे संबंधित है। स्वभावतः गहन अनुभव जब अभिव्यक्त किया जाय तो कठिनाई होती है। उस अनुभव के लिए हमारी जिन्दगी में न तो कोई शब्द होते हैं। उस अनुभव के लिए हमारे व्यवहार में प्रतीक खोजने भी कठिन हो जाते हैं। ठीक ठीक समानान्तर शब्दों की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए धर्म 'मेटाफरिक' हो जाता है। इसलिए धर्म प्रतीकात्मक, 'सिम्बालिक' हो जाता है। वह जो आत्यंतिक अनुभव है उसे पृथ्वी की भाषा में प्रगट करने के लिए रूपक, प्रतीक और संकेत चुनने पड़ते हैं, निर्मित करने पड़ते हैं। वे ही संकेत अभिव्यक्ति भी लाते हैं, वे ही संकेत अन्त में अवरोध भी बन जाते हैं। अभिव्यक्ति उनके लिए बनते हैं वे संकेत, जो उन संकेतों पर रुकते नहीं, इशारों को पकड़ते नहीं, पार निकल जाते हैं। और जो उन इशारों को पकड़ कर रुक

जाते हैं उनके लिए अवरोध हो जाता है। मील का पत्थर लगा है। तीर का निशान बना है। जो उस मील के पत्थर के पास ही मंजिल को समझ रुक जाता है वह मील का पत्थर उसके लिए अवरोध हो गया। इससे तो अच्छा होता कि रास्ते पर काइ मील के पत्थर न हों। उसे रुकने की कोई जगह न मिलती। वह मंजिल तक पहुंच जाता। लेकिन मील के पत्थर लगाने वाले ने चलने के सहारे के लिए मील के पत्थर लगाये। वह जो तीर का निशान है वह कहता है कि आगे, और आगे। यहां नहीं रुक जाना। जो गहरे देख पाता है उसे मील का पत्थर रोकता नहीं, बढ़ाता है। जो गहरे नहीं देख पाता वह मील के पत्थर पर रुक जाता है और बैठ जाता है। मील का पत्थर बोल नहीं सकता। प्रतीक गूंगे हैं। बोल नहीं सकते। जो समझ पाये समझ पाये, न समझ पावे, न समझ पाये।

धर्म को बहत से प्रतीक खोजने पड़े, उस अनुभव को बताने के लिए जो पारलौकिक है। दो चार प्रतीक मैं आपको ख्याल में दूं तो यज्ञ का प्रतीक भी समझ में आ सके। और तब यह भी समझ में आ सके कि यज्ञ के साथ भी मील के पत्थर का प्रयोग हो गया है। कुछ लोग प्रतीक को पकड़ के मील के पत्थर पर ही बैठ गये हैं। वह आग जला रहे हैं, घी डाल रहे हैं, गेहूं फेंक रहे हैं। और सोच रहे हैं. काम का अन्त हुआ। सोच रहे हैं बात पूरी हुई। यज्ञ के प्रतीक का यह अवरोध की तरह उपयोग हुआ। यह प्रतीक गतिमान भी हो सकता, डायनॅमिक हो सकता, गत्यात्मक हो सकता, आगे ले जा सकता है, लेकिन उन्हीं को जो इस प्रतीक में गहरे समझने की चेष्टा करें।

मनुष्य के अनुभव में अग्नि गहरा प्रतीक बन सकती है। क्योंकि अग्नि में कुछ खूबियां हैं। पहली खूबी तो यह है कि अग्नि की लपट सदा ही ऊपर की तरफ दौड़ती है। सदा ही ऊर्ध्वगामी है। जैसे ही मनुष्य की चेतना धार्मिक होनी शुरू होती है ऊर्ध्वगामी हो जाती है, ऊपर की तरफ दौड़ने लगती है। इसलिए बहुत प्रारंभ में ही यह ख्याल आ गया कि अग्नि प्रतीक बन सकती है भीतर की चेतना के ऊर्ध्वगमन का, ऊपर उठने का। दूसरी खूबी अग्नि की यह है कि अग्नि मे कुछ भी अशुद्ध हो तो जल जाता है। सोने को डाल दें अशुद्ध जल जाता है, शुद्ध निखर के बाहर आ जाता है। जिन्होंने धर्म की चेतना की ज्योति का अनुभव किया कि उस ज्योति में जो भी अशुद्ध है वह जल जाता है और जो शुद्ध है वह निखर आता है। अग्नि और भी गहरा प्रतीक बन गयी धर्म का। फिर तीसरी अग्नि की खूबी है कि लपटें थोड़ी दूर

तक ही दिखायी पड़ती हैं। किसी अदृश्य में खो जाती हैं। जरा दिखायी दीं और खोयीं। जिनको भी चेतना के ऊर्ध्वगमन का अनुभव है वे जानते हैं कि थोड़ी दूर तक ही पता चलता है कि मैं हूं। फिर मैं होने का पता नहीं चलता, फिर तो ब्रह्म में लीन हो जाता है। जरा सी झलक अपने होने की और फिर सर्व के होने में खो जाता है। इसलिए अग्नि और भी गहरा प्रतीक बन गयी। लपट झलकी भी नहीं और खोयी। ऊपर उठती भी नहीं और ब्रह्म के साथ एक हुई। सागर में गिर जाय बूंद तो खोजनी बहुत कठिन है। लेकिन फिर भी 'कंसीवेबल' है कि हम खोज लें। आखिर बूंद कहीं तो है ही। सागर में गिर जाय बूंद, खोजनी कठिन है कि हम उस बूंद को फिर से पा लें, लेकिन फिर भी अकल्पनीय नहीं है। सोच तो सकते हैं कि बूंद कहीं तो होगी ही। कोई न कोई उपाय खोजा जा सकता है कि वापस खोज लें। लेकिन अग्नि की लपट खो जाय आकाश में तो 'कंसीवेबल' भी नहीं है कि उसे वापस पा लें।

जो खो गया है ब्रह्म में वह 'प्वॉइंट आफ नो रिटर्न' पर पहुंच जाता है। वह वापस नहीं लौट सकता। वहां से वापसी नहीं है। इसलिए अग्नि का प्रतीक गहरा प्रतीक बन गया। और जब पहली बार अग्नि यज्ञ बनी तो 'मेटाफर' है, सूचक है। ऋषियों के आश्रम में जलती ही रहती है सदा। यज्ञ की ज्योति बढ़ती ही रहती है सदा आकाश की तरफ। आसपास से निकलते हुए साधक निरन्तर स्मरण कर पाते हैं उस लपट से, 'रिमेम्बर' कर पाते हैं—भीतर की लपट को निरंतर ऊपर उठाने का। उस अग्नि में जो भी आहुति डाली जाती है, उस अग्नि में जो भी डाला जाता रहा वह सब प्रतीक था अपने को डालने का। स्वयं को डालने का। अपने को निरन्तर डालते रहना है यज्ञ रूपी अग्नि में। वह सब प्रतीक थे। उन प्रतीकों को निरन्तर उपस्थित रखना अर्थपूर्ण था। अर्थपूर्ण ऐसे ही जैसे एक आदमी बाजार जाय, कुछ लाना है खरीद कर। भूल न जाय, कुर्ते के छोर में गांठ लगा लेगा। बाजार में दिन में दस बार गांठ पर नजर जाती है, ख्याल आता है कि कुछ लाना है। गांठ से कोई सम्बन्ध नहीं है लाने का। बिना गांठ भी लाया जा सकता है, लेकिन गांठ स्मरण के लिए है। आधार बन सकती है, चुभती रहेगी। ख्याल बनाये रखेगी कि कुछ लाना है। स्मृति को जगाये रखेगी दिन में पचीस बार, हजार काम में डूबे हुए भी नजर जायेगी कुर्ते की गांठ पर, ख्याल आयेगा कि कुछ लाना है। सांझ होते होते तक भूलना मुश्किल होगा। सांझ, जो घर लाना है, लेकर आदमी लौट आयेगा। गांठ के बिना भूलना हो सकता था। गांठ के साथ भूलना मुश्किल है।

लेकिन कोई गांठ की पूजा करने लग जाय तो भूल हो जायगी। क्योंकि तब गांठ स्मरण नहीं करायेगी, पूजा करवायेगी। सारे प्रतीक गांठ की तरह हैं। गुरुकुल में जलती हुई अग्नि, यज्ञ की उठती हुई लपटें, रोज सुबह दी हुई आहुति, पढ़े गये मंत्र, रिमेम्बरिंग हैं, गांठ हैं। और जिनको उन प्रतीकों का अर्थ पता था उनके लिए वह सिर्फ अग्नि न थी, वह चेतना की लपट थी। जिन्हें प्रतीकों का अर्थ पता था उनके लिए डाली गयी आहुति गेहूं नहीं थे, घी नहीं थे, जीवन था। वे प्रतीक थे। गांठ की तरह प्रतीक थे। फिर खो जाते हैं सब प्रतीक, जड़ चीजें हाथ में रह जाती हैं। फिर पागलों की तरह अग्नि जलती रहती है। उसमें लोग गेहूं और घी और कुछ कुछ डालते रहते हैं। और कण्ठस्थ किये हुए सूत्रों को दोहराये जाते हैं। जो दोहराने वाले होते हैं वे भी खरीदे गये होते हैं। हर यज्ञ के पीछे झगड़ा होता है, किस ब्राह्मण को ज्यादा मिल गया, किसको कम मिल गया, क्या हुआ क्या नहीं हुआ। किसकी फीस कितनी है। फीस के लिए कहीं यज्ञ किये जा सकते है? शुल्क लेकर कहीं धर्म की तरफ इशारे किये जा सकते हैं? धंधा बनाया जा सकता है धर्मो को? जब धर्म धंधा बन जाता है तब धर्म नहीं रह जाता। धंधे को तो धर्म बनाया जा सकता है, धर्मों को धंधा नहीं बनाया जा सकता। लेकिन हुआ उल्टा, धंधे को तो धर्म कोई नहीं बनाता, धर्म को बहुत लोग धंधा बना लेते हैं। यज्ञ प्रतीकात्मक है। पूरा जीवन ही यज्ञ है। और यह स्मरण आ जाय तो समस्त कर्म यज्ञ हैं। तब समस्त जीवन आहुति है। तब स्वयं को बना लेना है हवन का कुण्ड। सब समर्पित कर देना है उस कुण्ड में। डाल देना है स्वयं को, जला देना है स्वयं को, जल जाय अहंकार।

पूछ सकेंगे, पूछने का मन होगा कि गेहूं जैसी चीज क्यों डाली गयी? वह भी वैसा ही प्रतीक है जैसे अग्नि। गेहूं है बीज। छिपा है उसमें सब, अभी प्रगट नहीं हुआ। बीज को जमीन में बो दें तो प्रगट होगा, अंकुर निकलेगा, वृक्ष बनेगा और एक बीज करोड़ बीज बन जायेगा। जब गेहूं को डालते हैं यज्ञ में तो प्रतीक है इस बात का कि अहंकार जब बीज रूप हो तभी डाल देना, उसको बो मत देना जमीन में। अन्यथा अहंकार में अंकुर आ जायेंगे। हर अंकुर में सैकड़ों बीज लग जायेंगे। हर बीज में फिर सैकड़ों अंकुर लगने की संभावना पैदा हो जायगी। और अहंकार विराट वृक्ष की तरह बढ़ता चला जायगा। उसे जब बीज रूप हो तभी डाल देना होगा। अंकुरित मत करना, सींचना मत, खाद मत डालना, बढ़ाना मत, उसको 'स्ट्रंथन' मत करना, मजबूत मत करना,

पोषण मत करना। स्वभावतः बीज के लिए उन पुराने दिनों म गेहूं से निकट और कोई चीज न थी। निकटतम, अधिकतम प्रभावी, जीवन जिसपर निर्भर था उस गेहूं को दग्ध कर देना, राख–ऐसे ही अहंकार को दग्ध घर देना–राख। निर्बीज हो जाना अहंकार की दृष्टि से। अब बीज के साथ दो काम किये जा सकते हैं– जमीन में गड़ायें तो बीज अंकुरित होगा, करोड़ों बीज पैदा कर जायगा। आग में डाल दें तो बीज अंकुरित नहीं होगा सिर्फ राख हो जायगा। उसके पीछे कोई रेखा नहीं छूट जायेगी यात्रा की। अग्नि में डाले गये बीज, बीज रूपी अहंकार को डालने के प्रतीक थे।

घी भी फेंका गया है यज्ञ में। क्यों फेंका गया होगा, किस प्रतीक, किस 'मेटाफर' के ख्याल से? देखा होगा, घी को डालें अग्नि में, अग्नि की लपटें बढ़ती हैं। घी के डालनें से अग्नि की लपटें बढ़ती हैं। तीव्र होती हैं, उज्ज्वल होती हैं। प्रखर होती हैं, तेज होती हैं। घी के डालते ही अग्नि में त्वरा आती है। गेहूं को डालियेगा तो अग्नि की त्वरा कम होगी, गति क्षीण होगी; क्योंकि अग्नि की ताकत गेहूं को जलाने में लगेगी। तो जो लपट बनने की शक्ति थी वह घटेगी। लेकिन घी को डालिये तो अग्नि की ताकत घी को जलाने में नहीं लगती, घी की ताकत अग्नि को बढ़ाने में लगती है। जीवन की जो ज्योति है, उसमें दो काम करने हैं। उसमें बुराई को डालकर दग्ध करना है और भलाई को डालकर उस ज्योति को बढ़ाना है। घी भलाई का निकटतम प्रतीक हो सकता था जिन दिनों वह प्रतीक खोजा गया था, कई कारणों से– एक तो स्निग्ध है इसलिए उसका दूसरा नाम स्नेह भी है। प्रेम भी है। और भी कई कई कारणों से। घी प्रकृति में सीधा पैदा नहीं होता। गेहूं प्रकृति में सीधे पैदा होते हैं। अहंकार प्रकृति में सीधा पैदा होता है, बुराई सीधी पैदा होती है। भलाई को पैदा करने के लिए बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। वह सीधी पैदा नहीं होती। उसकी डायरेक्ट बर्थ नहीं होती। घी सीधा पैदा नहीं होता– दूध निकलेगा, दही बनेना, मथा जायगा, फिर घी निकलेगा। बहुत होगा दूध, बहुत होगा दही तो थोड़ा सा घी निकलेगा। बड़ा होगा श्रम, छोटी सी भलाई निकलेगी। श्रम होगा पहले, रूपांतरण होगा पीछे। सीधे घी पैदा नहीं होता। इसे ख्याल रखें, पैदा होने की प्रक्रिया है, प्रोसेस है। पैदा करेंगे तो ही पैदा होगा। अगर आदमी नहीं हो पृथ्वी पर तो घी पैदा नहीं होगा। दूध पैदा होगा, घी पैदा नहीं होगा। मनुष्य की चेतना ने घी को जन्म दिया। अगर मनुष्य न हो पृथ्वी पर तो भलाई पैदा न होगी। भलाई को मनुष्य की चेतना ने जन्म दिया। इस-

लिए अगर घी का प्रतीक ख्याल में आ गया हो तो बहुत आश्चर्यजनक नहीं है, सहज है। जिनके पास थोड़ी सी भी काव्य की दृष्टि है वह उघाड़ सकते हैं बात को कि क्यों यह प्रतीक ख्याल में आया होगा? मथना पड़ता है, मंथन करना पड़ता है। घी को जन्माना पड़ता है। भलाई मनुष्य के श्रम का फल है। ऐसे ही नहीं मिलती। गेहूं बिना आदमी के भी होता रहेगा। बीज गिरते रहेंगे, अंकुर निकलते रहेंगे। आदमी नहीं होगा तो भी पौधे होंगे, बीज होंगे चलती रहेगी यात्रा। लेकिन घी नहीं होगा पृथ्वी पर। आदमी नहीं होगा तो भलाई नहीं होगी पृथ्वी पर, शुभ नहीं होगा। तो जिन दिनों, जिस कृषि के जगत में गीता जन्मी, जिस कृषि के जगत में वेद जन्मा, जिस कृषि के और कृषकों की दुनिया के बीच यज्ञ की धारणा जन्मी—घी निकटतम प्रतीक था शुभ का। अब यह मजे की बात है, अशुभ को डालें जीवन चेतना में तो अशुभ जल जायगा लेकिन जीवन की चेतना को भी क्षीण करेगा। अशुभ जलेगा तो भी जीवन की चेतना को क्षीण करेगा। शुभ को डालें जीवन की चेतना में, तो शुभ जीवन की चेतना को क्षीण नहीं करेगा, बढ़ायेगा। दूसरी बात भी ख्याल रखें कि अन्ततः शुभ को भी जला देना है। शुभ जलेगा और ज्योति बढ़ेगी। लेकिन जला देना है उसे भी। उसे भी बचा नहीं लेना है। अन्यथा वह भी बन्धन बन जायगा। घी रहस्यपूर्ण है इस अर्थों में – जल भी जाता है, मिट भी जाता है, जीवन की धारा को ऊपर की तरफ गतिमान भी कर जाता है, लपटों को प्राण दे जाता है, आकाश की तरफ दौड़ने का बल दे जाता है। और जल भी जाता है, खो भी जाता है, विदा भी हो जाता है। कहीं कोई रूप-रेखा नहीं छूट जाती। यज्ञ में फेंका गया घृत, आस-पास सिर्फ एक सुवास छोड़ जाता है। सिर्फ एक सुगन्ध छोड़ जाता है। शुभ जब जलता है तो सुगन्ध छोड़ जाता है। वह सुवास व्याप्त हो जाती है। साधु के पास शुभ होता है। संत के पास शुभ की सिर्फ सुवास होती है, शुभ नहीं होता। साधु अग्नि में जलता हुआ घृत है, संत जल गया घृत है। शुभ भी जल गया सिर्फ सुवास रह गयी। जिनके पास बहुत तीव्र नासारंध्र हैं वे ही केवल उस सुवास को पकड़ सकेंगे। इसलिए साधु को पहचानना बहुत आसान है, संत को पहचानना बहुत कठिन है। साधु को कोई भी पहचान लेता है क्योंकि शुभ दिखायी पड़ता है। संत को पहचानना कठिन हो जाता है क्योंकि शुभ दिखायी नहीं पड़ता। शुभ अब पारदर्शी नहीं रह जाता। शुभ अब चारों तरफ स्पर्श नहीं किया जा सकता, अब शुभ खो जाता है सुवास में। ऐसा है यह यज्ञ का प्रतीक।

जीवन ही जिसका यज्ञ हो जाय। यज्ञ को ही जो यज्ञ में समर्पित कर

दे, ऐसा व्यक्ति –ऐसा व्यक्ति ही जीवन का चरम अनुभव, ऐसी चेतना ही परब्रह्म को जान पाती है। अल्टीमेट को, आत्यंतिक को जान पाती है। ये प्रतीक सड़ जाते हैं। सब प्रतीक सड़ जाते हैं। अपने कारण नहीं, हमारे कारण। क्योंकि हमारी जो प्रतीकों की पकड़ है वह नीचे के छोर पर होती है। और जो प्रतीकों को जन्म देता है वह ऊपर के छोर से जन्म देता है। जो प्रतीक को जन्म देता है वह आकाश की तरफ से प्रतीक को निर्मित करता और हम जब प्रतीक को पकड़ते है तो जमीन की तरफ से पकड़ते हैं। जो अग्नि के प्रतीक को देता है वह चेतना के लिए प्रतीक खोजता है और हम जब अग्नि को पकड़ते हैं तो अग्नि को ही पकड़ते हैं। फिर अग्नि की पूजा चली। फिर हम गेहूं को जलाते रहे, फिर हम घी को जलाते रहे। फिर हम सब भूल जाते हैं, घी क्या है? अग्नि क्या है? यज्ञ क्या है? सब भूल जाते हैं। एक थोथा, मरा हुआ 'डेड सिम्बल' हाथ में रह जाता है। फिर उसके आस-पास हम घूमते रहते हैं, भटकते रहते हैं सदियों तक। और बड़ी कठिनाई तो तब पैदा होती है कि जब कोई व्यक्ति इस भटकाव का विरोध करे तो धर्म का दुश्मन मालूम पड़े। कोई कहे कि यह पागलपन हैं तो निश्चित ही धर्म का दुश्मन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम कहेंगे, कृष्ण तो गीता में कहते हैं और आप पागलपन कहते हैं। लेकिन जिसे कृष्ण गीता में कहते और जिसे आप पकड़े हैं उसमें आकाश और जमीन का फासला हो गया है। अगर कृष्ण भी वापस लौट आयें तो आपको पागल कहेंगे।

प्रतीक पकड़ने के लिए नहीं, पार हो जाने के लिए हैं। 'टु बी ट्रासेंडिट' हर प्रतीक पार हो जाने के लिए है और जब प्रतीक पार नहीं होते तब सम्प्रदाय खड़े होते हैं। मेरे जैसे आदमी की कठिनाई भारी है। भारी इसलिए है कि मैं देखता हूं, प्रतीक के पीछे प्राण है। और इसलिए है कि मैं देखता हूं कि आपके हाथ में लाश है, तब मेरी कठिनाई भारी है। तब एक दिन मैं कहता हूं, पागल हैं आप और फिर भी मैं जानता हूं प्रतीक सार्थक है। दूसरे दिन कहता हूं, सार्थक है प्रतीक। तब आप पाते हैं, असंगत है यह आदमी। क्योंकि कल कहा था कि गलत, आज कहते हैं सही है। कल तुम्हें गलत कहा था, प्रतीक को नहीं। आज प्रतीक को सही कह रहा हूं, तुम्हें नहीं। दोनों ही करना पड़ेंगे। प्रतीक के भीतर गहरा छिपा हुआ राज है। उसे बचाना जरूरी है। लेकिन आपके हाथ में जो प्रतीक है वह मुर्दा है। उसे मिटाना भी जरूर है। ये दोनों बातें हो पायें तो धर्म का रहस्य समझ में आता है, अन्यथा नहीं आता।

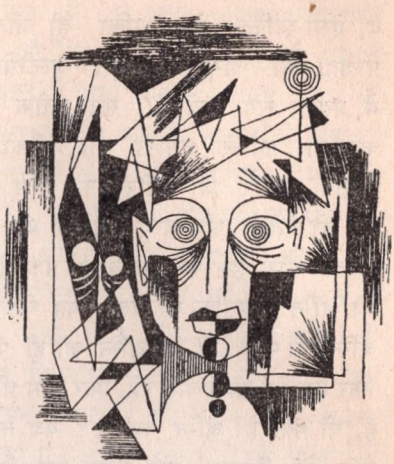

स्वयं के कर्म और विराट शक्ति

जब तक व्यक्ति है तबतक अपने कर्मों के लिए जिम्मेदार है। जब व्यक्ति अपने को विराट में छोड़ देता है तब जिम्मेदार नहीं है। इसे ठीक ऐसा समझें कि एक छोटा बच्चा अपने बाप का हाथ पकड़कर रास्ते पर चल रहा है। बच्चा गिर पड़े, बाप जिम्मेदार है। लेकिन लड़के ने बाप का हाथ छोड़ दिया और खुद ही चलता है, अब गिर पड़े तो बाप जिम्मेदार नहीं है। रिस्पोंसिबिल्टी, उत्तर-दायित्व आपके अपने ऊपर निर्भर है। अगर आप अहंकार के सहारे जीने की कोशिश मे लगे हैं तो अपने प्रत्येक कर्म के लिए जिम्मेदार हैं। बुरा किया है तो आपने किया है, अच्छा किया है तो आपने किया है। क्योंकि आपके प्रत्येक कर्म के पीछे आपके कर्ता का भाव खड़ा है। लेकिन एक व्यक्ति ने समर्पण किया है सब विराट को, उसने कहा—जो तेरी मर्जी, बुरा करवाये तो तू, अच्छा करवाये तो तू। अगर उसने मन्दिर बनाया और गांव में जाकर कहे कि मंदिर मैंने बनाया और कल चोरी में पकड़ा जाय और कहे, चोरी परमात्मा ने करवायी, तब फिर उस आदमी

ने समर्पण किया नहीं। तब फिर वह बेइमानी कर रहा है। अपने साथ भी और परमात्मा के साथ भी। नहीं, तब वह कहेगा कि परमात्मा ने मंदिर बनाया, मैं कौन ? और तब वह कहेगा परमात्मा ने चोरी करायी, मैं कौन ? और अगर अदालत उसे सजा दे दे तो वह कहेगा परमात्मा ने सजा दे दी, मैं कौन हूं ? तब फिर कठिनाई नहीं है। जब तक व्यक्ति कर्ता के भाव से जीता है तब तक सारी जिम्मेदारी उसकी है, इसलिए है कि वह खुद अपने हाथ से जिम्मेदारी ले रहा है। उसकी हालत करीब करीब ऐसी है कि मैंने सुना है :

एक फकीर एक ट्रेन में सवार हुआ। बैठा है सीट पर लेकिन अपना बिस्तर अपने सिर पर रखे रहा। पास-पड़ौस के लोगों ने जरा चौंक के देखा। फिर किसी ने कहा कि महाशय, बिस्तर नीचे आराम से रखें, यह क्या कर रहे हैं ? उस फकीर ने कहा—लेकिन टिकट मैंने सिर्फ अपने लिए लिया है तो बिस्तर का बोझ ट्रेन पर डालना ठीक नहीं है। मैं अपने ही ऊपर बोझ रखे हुए हूं। लेकिन लोगों ने कहा कि महाशय आप अपने सिर पर भी रखें तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। ट्रेनपर बोझ पड़ ही रहा है। आप नीचे रखें कि सिर पर रखें। हां, सिर पर रखकर आप परेशान भी हो रहे हैं। ट्रेन पर कोई अन्तर नहीं पड़ रहा है। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, मैंने तो सोचा, कि अज्ञानी हैं यहां, इसलिए सिर पर रखूं। मुझे क्या पता कि इस कमरे में ज्ञानी हैं। उसने बिस्तर नीचे रख दिया। लोग और हैरान हुए। उन्होंने कहा, हम तुम्हारा मतलब नहीं समझे। उस आदमी ने कहा, मैं तो यह सोच कर कि तुम सब लोग अपनी सारी जिन्दगी का भार अपने ऊपर रखते होओगे इसीलिए ऐसा किया, वैसे सब भार परमात्मा पर है। लेकिन तुम लोग मकान बनाओगे तो कहोगे मैंने बनाया। बोझ तुम अपने ऊपर रखोगे। इसीलिए मैं भी बिस्तर अपने सिर पर रख कर बैठा कि तुम्हारे बीच यही संगत होगा। लेकिन तुम बड़े ज्ञानी हो। अच्छा हुआ। इस फकीर ने हम सब की मजाक की, गहरी मजाक की और हृदय के गहरे भाव को छूने की कोशिश की। जब हम जिम्मेदार हैं, तब भी वस्तुतः तो परमात्मा ही जिम्मेदार है। लेकिन वस्तुतः का कोई सवाल नहीं है। तबतक हम अपने सिर पर बोझा रखने का कष्ट तो भोगेंगे ही। ट्रेन भले ही पूरे बोझ को ढोती हो लेकिन जो आदमी पेटी अपने सिर पर रखे है वह तो बजन ढोयेगा ही। तकलीफ भोगेगा ही। सिर पर से पेटी गिर पड़े तो हाथ पैर उसका टूटेगा ही। इस बात के होते हुए कि ट्रेन पूरा बोझ ढो रही है।

विराट सब चीजों के लिए जिम्मेदार है। लेकिन ध्यान रहे, विराट से समझौता नहीं हो सकता। आप ऐसा नहीं कह सकते कि कुछ के लिए मैं जिम्मेदार हूं, कुछ

के लिए तुम जिम्मेदार हो। जब बुरा हो तो तुम जिम्मेदार, जब भला हो तो मैं जिम्मेदार हूं। ऐसा नहीं चलेगा। या तो सब छोड़ दो विराट पर, या फिर सब अपने ही ऊपर रखना पड़ता है। अहंकारी सब अपने ऊपर रखकर चलता है। अधार्मिक सब अपने ऊपर रखकर चलता है। धार्मिक सब उसपर छोड़ देता है, लेकिन सब–'टोटल'। इसमें रत्ती भर बचाया नहीं जा सकता है।

दोनों ही बातें दो तलों पर सही हैं। जहां तक आम आदमी का संबंध है वह हर चीज के लिए खुद ही जिम्मेदार होता है। और इसलिए वह जिम्मेदारी का दुख भोगता है। जिम्मेदारी में दुख है, पीड़ा है, संताप है। जो जानता है वह सब छोड़ देता है प्रभु के ऊपर, फिर वह दुख नहीं भोगता। फिर वह स्वतंत्रता का सुख भोगता है। फिर वह सब दायित्वों से मुक्त होकर फूल की तरह हल्का-फुल्का हो जाता है। फिर वह पक्षियों की तरह गीत गा सकता है और नदियों के झरनों की तरह दौड़ सकता है और नाच सकता है। फिर उसकी जिन्दगी किसी भी बोझ से दबी हुई नहीं है। और ध्यान रहे, बड़े मजे की बात है कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा पर छोड़ देता है उतना ही बुरा कर्म मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बुरे कर्म के लिए अहंकार का होना जरूरी है। और जो व्यक्ति जितने अहंकार से भरा होता है उससे शुभ कर्म हो नहीं सकता। क्योंकि अहंकार शुभ कर्म के लिए अनिवार्य बाधा है। इसलिए खुद पर जिम्मा लिया हुआ आदमी पाप की गठरी को सिर पर बढ़ाता ही चला जाता है। असल में गठरी सिर्फ पाप की होती है, पुण्य की गठरी, ऐसा शब्द आपने सुना नहीं होगा। पुण्य की कोई गठरी होती नहीं। पुण्य आया कि गठरी वगैरह से मुक्ति हो जाती है। सिर खाली हो जाता है। पाप की ही गठरी होती है, उसका ही बोझ और 'बर्डन' होता है। पुण्य का कोई बोझ नहीं होता। जो व्यक्ति सब परमात्मा पर छोड़ देता है वह हवा पानी की तरह सरल हो जाता है। फिर जो होता है होता है, उसके लिए फिर कोई कठिनाई नहीं है। कोई बोझ नहीं, कोई दायित्व नहीं, कोई पुण्य नहीं, कोई पाप नहीं, क्योंकि कोई कर्म नहीं है।

कृष्ण अपनी गीता में पूरे वक्त अर्जुन को यही समझा रहे हैं। अर्जुन पक्के बोझ से दबा हुआ है। बहुत रिस्पोंसिबल आदमी मालूम होता है, बहुत दायित्वपूर्ण– वह कहता है। यह मर जाएंगे, वह मर जाएंगे– जैसे वह बचायेगा तो वह बच जाएंगे। जैसे वह न मारेगा तो वह नहीं मरेंगे। वह कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है कि जैसे वह कोई सारे अस्तित्व का सेन्टर है। सब कुछ उसके ऊपर निर्भर है। वह जमाने भर की बातें कर रहा है कृष्ण से कि इससे तो कुल

का नाश हो जायेगा, इससे तो संतति विकृत हो जायगी। इससे तो भविष्य में सब अंधकार हो जायगा। सधवाएं विधवाएं हो जायेंगी, पापाचरण बढ़ेगा, वह सब बता रहा है, कि यह सब उसके कारण होगा अगर वह युद्ध करेगा। अगर वह युद्ध से हट जायेगा तो सब ठीक होगा? लेकिन अब तो अर्जुन कहीं भी नहीं है लेकिन सब कहीं भी ठीक नहीं दिखायी पड़ रहा है। अर्जुन का भ्रम यही है। वह सोच रहा है, सारा जिम्मा मेरा है। मैं हूं सारी चीजों के बीच में। कृष्ण पूरे समय एक ही बात समझा रहे हैं कि तू अपने को सेन्टर न मान। तू अपने को केन्द्र न मान। तू व्यर्थ की उलझन में मत पड़। जो करवा रहा है, जो कर रहा है, उस पर तू छोड़ दे। उसे मारना ही है तो मारेगा। तेरे बहाने से या किसी और के बहाने से, वह किसी भी कंधे पर तीर रख जायेगा और वह मर जायेंगे। तू फिक्र मत कर। तू सिर्फ उसके हाथ में निमित्त मात्र हो जा। लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा है। वह कर्ता है। जो कर्ता है वह निमित्त मात्र कैसे हो जाय? जिसे ख्याल है, मैं करने वाला हूं वह किसी के हाथ का माध्यम कैसे बन जाय? कबीर की तरह अर्जुन नहीं हो सकता।

कबीर कहते हैं, यह बांसुरी मैं बजा रहा हूं। इसमें मैं बांसुरी हूं, बांस की पोंगरी। स्वर मेरे नहीं हैं। स्वर उसके हैं, परमात्मा के। इसलिए अगर गीत के लिए कोई धन्यवाद देना हो तो उसी को दे देना। मेरा कोई हाथ नहीं है, मैं तो सिर्फ बांस की पोंगरी हूं जिसमें से स्वर उसके बहते हैं। कृष्ण पूरी गीता में अर्जुन को कह रहे हैं कि तू बांस की पोंगरी हो जा। स्वर उसके बहने दे, तू यह मत सोच कि तू बजा रहा है। तू बीच में मत आ। तू हट जा, तू निमित्त हो जा। वही उसकी समझ में नहीं आ रहा है।

जब ये दो बातें मैं कहता हूं कि व्यक्ति जिम्मेदार है अपने प्रत्येक कर्म के लिए तो मेरा मतलब है, जब तक आपका अहंकार है, जब तक व्यक्ति है तब तक आपको जिम्मेदार होना पड़ेगा। व्यर्थ ही आप जिम्मेदार हैं, ट्रेन में चढ़े हैं गठरी सिर पर रखे हैं। तब कोई ट्रेन की जिम्मेदारी नही है। आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं। लेकिन जैसे ही व्यक्ति ने अपने को छोड़ा, समर्पित किया, वैसे ही व्यक्ति जिम्मेदार नहीं है फिर विराट ही है। और विराट की कोई जिम्मेदारी नहीं, क्योंकि विराट किसके प्रति रिस्पोंसिबल होगा? किसके प्रति जिम्मेदार होगा? किसी के प्रति नही। व्यक्ति को तो जिम्मेदार होना पड़ेगा। विराट की जिम्मेदारी का कोई सवाल नही। इनमें कोई विरोध नहीं है। यह दो तलों पर चीजों को

देखना है। दो तल हैं – एक अज्ञानी का तल है, अज्ञानी के तल पर समझना पड़ेगा। एक ज्ञानी का तल है, ज्ञानी के तल पर भी समझना पड़ेगा। और बहुत बार बड़ी उलझन होती है कि अज्ञानी होता तो अज्ञानी के तल पर है, और ज्ञानी के तल की बातें करने लगता है, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। ऐसा रोज होता है। हमारे देश में तो जरूर हुआ है। क्योंकि इस देश में ज्ञान की इतनी बातें थीं कि अज्ञानी भी उनको करना सीख गये। वे भी ज्ञान की बातें करने लगे। रहते अज्ञानी की तरह, जीते अज्ञानी की तरह, बोझ अज्ञानी का लिये रहते हैं, पर मौके पर ज्ञानी की तरह बातें करने लगते हैं।

मेरे पड़ोस में एक आदमी मर गया। मैं उनके घर गया। पास पड़ोस के लोग इकट्ठे थे। सब समझा रहे थे कि आत्मा तो अमर है। मैंने सोचा, इस मुहल्ले में इतने ज्ञानी! वे कहते हैं आत्मा अमर है, रोने की क्या जरूरत है? क्यों दुख मना रहे हैं? कोई मरता तो है नहीं, शरीर ही मरता है। मैंने उनके चेहरे गौर से देख लिये कि कभी जरूरत पड़े सलाह-मशविरे की तो उनके पास चला जाऊंगा। फिर एक दिन पता चला कि जो सज्जन अगुवा होकर समझाते थे कि आत्मा अमर है, उनके घर कोई मर गया। मैं भागा हुआ वहां पहुंचा। देखा तो वह रो रहे हैं। मैं बहुत हैरान हुआ। फिर मैंने कहा थोड़ा चुप्पी साध कर बैठूं। लेकिन हैरानी और बढ़ी। जिनके घर वे समझाने गये थे वे लोग समझाने आये हुए थे और कह रहे थे, आत्मा अमर है। काहे के लिए रो रहे हैं। अब ये दो तल की बातें हैं। जो आत्मा को अमर जानते हैं उनकी दुनिया बहुत अलग है, लेकिन बात उनकी चुरा ली गयी। और जो आत्मा को मरने वाला मानते हैं जानते हैं भलीभांति कि मरेगी – मरे या न मरे – उनका जानना यही है कि मरेगी, उनके पास यह चोरी की बात है।

ज्ञान की चर्चा लोग सुनते हैं। मैं एक संन्यासी के आश्रम में कुछ दिन मेहमान था। वहां वे रोज समझाते थे कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध है। वह कभी अशुद्ध होती ही नहीं। उनके सामने मैं लोगों को बैठे देखता था। वे कहते, जी महाराज, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। मैंने उन लोगों से पूछा अकेले में, कि तुम कहते हो जी, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, तो बोले कि बिल्कुल ठीक बात है। आत्मा बिल्कुल शुद्ध है। लेकिन वे लोग जो उनके सामने पगड़ियां बांधते और कहते थे आत्मा बिल्कुल शुद्ध है वे सब तरह के चोर, सब तरह के ब्लैकमार्केटियर, सब तरह के उपद्रवों में सम्मिलित हैं। वे उसी ब्लैक मार्केट से वहां मंदिर भी खड़ा करवाते हैं। और बैठ के सुनते थे कि आत्मा शुद्ध-बुद्ध है। सदा शुद्ध है, वह कभी पाप करती ही नहीं, कभी पाप

उससे होता ही नहीं। आत्मा ने कभी कुछ किया हो नहीं। उनके मन को बड़ी राहत और कॉंसोलेशन मिलता होगा कि अपन ने ब्लैक मार्केट नहीं किया। अपन ने कोई चोरी नहीं की। आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, बड़े प्रसन्न घर लौट रहे हैं। वहय हां सुनने सिर्फ यही आ रहे हैं कि आत्मा शुद्ध है। अर्थात् अशुद्ध तो हो ही नहीं सकती। कितनी ही अशुद्धि करो, अशुद्ध होने का कोई डर नहीं है। यह ज्ञान की बात, अज्ञान की दुनिया में जाकर बड़ा उपद्रव खड़ा करती है। भारत के नैतिक पतन का कारण यही है। यहां दो तल की बातें हैं– एक तल पर बहुत ऊंचा ज्ञान था परन्तु दूसरे तल पर हमारा आदमी बहुत नीचे है। ऊंचे तल की बातें उसके कानों में पड़ गयीं। वह वक्त बेवक्त उनका उपयोग करता रहता है। वह कहता है, सब संसार माया है। इधर कहता चला जाता है सब संसार माया है, और जिस जिस चीज को माया कहता है उसके पीछे जी जान लगाकर दौड़ा भी चला जाता है। ये दो तल हैं।

इसलिए मैंने जो बात कही वह दो तल पर ही समझ लेनी उचित है। जब तक आपको पता है कि आप हो, तब तक समझना कि सब जिम्मेदारी आपकी है। तब तक ऐसा मत करना कि आप भी बने रहो और जिम्मेदारी परमात्मा पर छोड़ दो। ऐसा नहीं चलेगा। अगर जिम्मेदारी परमात्मा पर छोड़नी हो तो आपको भी अपने को परमात्मा के चरणों में छोड़ देना पड़ेगा। वह अनिवार्य शर्त है। और जब तक आप अपने 'मैं' को न छोड़ पाओ उसके द्वार पर, तब तक सारी जिम्मेदारी का बोझ अपने सिर पर रखना है। वह ईमानदारी है, सिंसियरिटी है। ठीक है, फिर पाप किया है, पुण्य किया है, मैं जिम्मेदार हूं, क्योंकि जो भी किया है वह मैंने किया है। और अगर ऐसा लगे कि नहीं, सब जिम्मेदारी विराट की है तो फिर इस 'मैं' को उसके चरणों में रख आयें। जिस दिन मैं को उसके चरणों में रख दो और जिस दिन यह हिम्मत आ जाय कहने की कि मैंने कुछ भी नहीं किया, सब उसने कराया है; बस वही है, मैं नहीं हूं, उसका ही फैला हुआ हाथ हूं। फिर उस दिन से आपकी कोई भी जिम्मेदारी नहीं। लेकिन बड़े मजे की बात है कि उस दिन से आपके जीवन से बुरा एकदम विलीन हो जायगा। क्योंकि बुरा घटित नहीं हो सकता बिना अहंकार के। उस दिन से आपके जीवन में शुभ्र के फूल खिलने शुरू हो जायेंगे, सफेद फूलों से भर जायेगी जिन्दगी। क्योंकि जहां अहंकार नहीं है वहां शुभ्र फूल अपने आप खिलने शुरू हो जाते हैं।

तब और अब

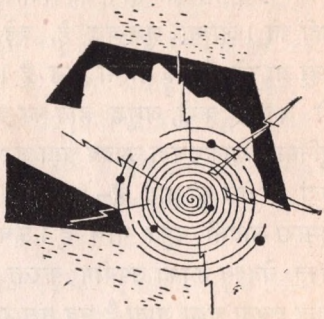

गीता के चतुर्थ अध्याय के १३ वें श्लोक के संदर्भ में गीताकार की मूल भावना का विश्लेषणात्मक अर्थ एवं आज के संदर्भ में आचार्यश्री द्वारा युक्तियुक्त व्याख्या

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

अर्थ -- हे अर्जुन, गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं। उनके कर्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्ता ही जान।

आचार्यश्री : कृष्ण इस श्लोक में कहते हैं गुण और कर्म के अनुसार चार वर्ण मैंने ही रचे। एक बात, और तत्काल दूसरी बात कहते हैं कि फिर भी, उन्हें निर्माण करने वाले मुझ कर्ता को तू अकर्ता ही जान। बहुत मिस्टीरियस, बहुत रहस्यपूर्ण वक्तव्य है। पहले हिस्से को पहले समझ लें, फिर दूरे हिस्से को समझें।

वर्ण की बात ही असामयिक हो गयी। कृष्ण के इस सूत्र को पढ़के न मालूम कितने लोग बेचैनी अनुभव करते हैं। परमात्मा ने रचे हैं वर्ण, कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि वर्णों के नाम पर इतनी बेहूदगी हुई और वर्णों के नाम पर इतना अनाचार हुआ है और वर्णों की ओट और आड़ में इतनी सड़ाँध पैदा हुई है कि

हमारी वर्ण व्यवस्था

भारत का पूरा हृदय ही कैन्सर से ग्रस्त हुआ लगता है। आज कोई भी विचारशील व्यक्ति जब इस सूत्र को पढ़ता है तो थोड़ा या तो बेचैन होता है या जल्दी इसको पढ़के आगे निकल जाता है। इसपर ज्यादा रुकता नहीं। ऐसा लगता है कि कुछ ठीक नहीं, आगे बढ़ो। पर मैं इसपर जरा रुकना चाहूंगा। क्यों ? क्योंकि जीवन में सत्यों के आधार पर भी असत्य चल जाता हैं। सच तो यह है कि असत्य के पास अपने पैर नहीं होते। उसके पैर सदा सत्य से ही उधार लेने पड़ते हैं। इसलिए असत्य बोलने वाला बहुत कसमें खाता है कि जो मैं बोल रहा हूं वह सत्य है। बेईमानी को भी ईमानदारी के वस्त्र पहनने पड़ते हैं। और दुनिया में जब भी कोई सत्य जीवन सिद्धान्त प्रगट होता है तो उसका भी दुरुपयोग किया गया है, किया जाता रहा है। लेकिन इससे सिद्धान्त गलत नहीं होते। एटम का विश्लेषण हुआ। परिणाम में हिरोशिमा और नागासाकी का विध्वंस मिला। हिरोशिमा और नागासाकी के कारण एटम के विश्लेषण का सिद्धान्त गलत नहीं होता। लाख आदमी मर गये, जल के राख हो गये, पीढ़ियों दर पीढ़ियों तक बच्चे प्रभावित रहेंगे। पंगु, अपंग, अंधे, लंगड़े, लूले पैदा होंगे। लेकिन फिर भी अणु के विश्लेषण का सिद्धान्त, थियरी गलत नहीं होती है। गलत उपयोग हुआ, यह हमारे कारण। सिद्धान्त के कारण नहीं। वर्ण के कारण जो जो हुआ उसके लिए हम जिम्मेदार हैं, हम गलत लोग। उसके लिए वर्ण की वैज्ञानिक चिन्तना जिम्मेदार नहीं है। कृष्ण जब कहते हैं तो वह दो शब्दों का उपयोग करते हैं। वह कहते हैं गुण और कर्म के अनुसार चार वर्ग बनाये।

गुण और कर्म—व्यक्ति व्यक्ति में गुणों का भेद है। और दुनिया में कोई समानता का उपाय नहीं है जिससे हम गुण-भेद मिटा सकें। हम कितनी ही बड़ी कम्युनिस्टिक सोसायटी को पैदा कर लें, कितना ही साम्यवादी समाज निर्मित कर लें, गुण भेद नहीं मिटा पायेंगे। धन को बराबर बांट दें, कपड़े एक से पहना दें, मकान एक से बना दें—गुण भिन्न ही होंगे। गुण में अन्तर नहीं मिटाया जा सकेगा। कोई उपाय नहीं है। गुण व्यक्ति की आत्मा का हिस्सा है। बाह्य समाज व्यवस्था का हिस्सा नहीं है गुण। इसलिए पहली बात आपसे कहता हूं कि कृष्ण का यह ख्याल कि यह वर्ण की व्यवस्था मैंने बनायी, यह व्यक्ति के आंतरिक गुणधर्म की चर्चा है। इसका सामाजिक व्यवस्था से दूर का संबंध है। गहरे में संबंध व्यक्ति के भीतर के निजी व्यक्तित्व से है। इंडीविजुअलिटी से है। एक व्यक्ति में गुण का भेद है। और गुण हम जन्म से लेकर पैदा होते हैं। गुण निर्मित नहीं होते, 'बिल्टइन' होते हैं। पैदाइश के साथ होते हैं। वह जो मा और पिता से कण मिलते हैं हमें, हमारे सब गुण उनमें ही छिपे हैं। आइस्टीन इतनी बुद्धिमता को उपलब्ध होगा,

यह बात उसके पहले अणु में छिपी हुई है। और आज नहीं कल, वैज्ञानिक पहले अणु की जांच करके खबर कर सकेंगे कि यह व्यक्ति क्या होगा। वैज्ञानिक तो यहां तक पहुंच गये हैं कि उनका ख्याल है, जैसे आज बाजार में फलों की और फूलों की दुकान पर फूलों के बीजों के पैकट मिलते हैं और अन्दर बीज होते हैं और ऊपर फूल की तस्वीर होती है कि उन बीजों को अगर बो दिया तो ऐसे फूल पैदा हो जायेंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि पच्चीस साल के भीतर इस सदी के पूरे होते होते हम आदमी के जीवाणु को भी पैकेट में रख कर दुकान पर दे सकेंगे कि यह जीवाणु इस तरह का व्यक्ति बन सकेगा। उसकी तस्वीर भी ऊपर दे सकेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि वह जो पहला अणु है उससे सारा 'बिल्टइन', सभी भीतर से निर्मित गुणों की व्यवस्था है। वह बाद में प्रगट होगी। मौजूद सदा से है।

उस गुण में बुनियादी भेद हैं। उन भेदों को कृष्ण कहते हैं चार में मैंने बांटा। मैंने, अर्थात् प्रभु ने चार में बांटा। प्रकृति ने, परमात्मा ने, जो भी नाम हम पसंद करें, चार मोटे विभाजन किये। और चार ही मोटे विभाजन हैं। यह बहुत संयोग की बात नहीं है क्या कि दुनिया में जब भी जिन लोगों ने मनुष्यों के टाइप का विभाजन किया तो विभाजन हमेशा चार में किया। चाहे कहीं भी किया हो। अभी पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक कार्ल गुस्ताफ जुंग ने, इस सदी के बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक ने, जब आदमियों के टाइप बांटे तो उसने भी चार में बांटे। नाम अलग, लेकिन बांटे चार में। इसमें कुछ मजबूरी है। चार ही हैं प्रकार मोटे। फिर तो एक एक व्यक्ति में थोड़े थोड़े फर्क होते हैं, लेकिन मोटे चार ही प्रकार हैं।

कुछ लोग हैं जिनके जीवन की ऊर्जा सदा ही ज्ञान की तरफ बहती है। जो जानने को आतुर और पागल हैं। जो जीवन गवां देंगे लेकिन जानने को नहीं छोड़ेंगे। अब एक वैज्ञानिक जहर की परीक्षा कर रहा है कि किस किस जहर से आदमी मर जाता है। वह जानता है कि इस जहर को जीभ पर रखने से वह मर जायगा, लेकिन फिर भी वह जानना चाहता है। हम कहेंगे पागल है, बिल्कुल पागल है। ऐसे जानने की जरूरत क्या है ? लेकिन हमारी समझ में न आयगा। वह ब्राह्मण का टाइप है। वह बिना जाने नहीं रह सकता। जीवन लगा देगा, लेकिन जान के रहेगा। वह जहर को जीभ में रखके उस आनन्द को पा लेगा, जानने के आनन्द को कि हां, इस जहर से आदमी मरता है। हम कहेंगे इसमें कौन सा फायदा है ? उस आदमी को क्या मिलता है ? हम समझ न पायेंगे। सिर्फ अगर हमारे भीतर कोई ब्राह्मण होगा तो समझ पायेगा, अन्यथा न समझ पायेंगे। आइंस्टीन को क्या मिल रहा है, सुबह से सांझ तक लगा है प्रयोगशाला में ? क्या मिल रहा है ? कौन सा धन ? यह

सुबह से सांझ तक पागल की तरह ज्ञान की खोज में किसलिए लगा है ? नहीं, किसलिए का सवाल नहीं है, अन्त का सवाल नहीं है, मूल का सवाल है । मूल में गुण उसके पास ब्राह्मण का है । वह जानने के लिए लगा हुआ है । कृष्ण कहते हैं गुण और कर्म चार तरह के गुण हैं । चार तरह के आर्च टाइप हैं । जुंग ने आर्च टाइप शब्द – प्रयोग किया है । चार तरह के मूल प्रकार हैं । एक, ज्ञान की खोज–जिसकी आत्मा आतुर है, जिसकी आत्मा जानने के लिए अंतहीन यात्रा करती है । जो लोग चांद पर पहुंचे हैं, चांद पर क्या मिल जायगा ? कुछ बहुत मिलने को नहीं है । लेकिन जानने की उद्दाम वासना है । चांद पर भी नहीं रुकेंगे–और, और, और आगे । कहीं कोई सीमा नहीं है । ये जो ज्ञान की खोज में आतुर लोग हैं ये ब्राह्मण हैं गुण से ।

दूसरा एक वर्ग है जो शक्ति का खोजी है । उसके लिए पावर, शक्ति सब कुछ है । वह शक्ति का पूजक है । शक्ति मिली तो सब मिला । वह कहीं से भी जीवन में शक्ति मिल जाय उसी की यात्रा में लगा रहता है । यह जो शक्ति का खोजी है वह भी एक टाइप है । उसे इंकार नहीं किया जा सकता । क्षत्रिय उस गुण का व्यक्ति है । अर्जुन इसी गुण का व्यक्ति है । कृष्ण ने इसी सिलसिले म बात भी कही है । वह उसे यही समझाना चाहते हैं कि तू अपने गुणों को पहचान, अपनी निजता को पहचान और उसके अनुसार ही आचरण कर, अन्यथा तू मुश्किल में पड़ जायगा । क्योंकि जब भी कोई व्यक्ति अपने गुण को छोड़कर दूसरे के गुण की तरह व्यवहार करता है तब बड़ी अड़चन में पड़ जाता है । क्योंकि वह काम कर रहा है जो वह कर नहीं सकता । और उस काम को छोड़ रहा है जिसे वह कर सकता था । जीवन का समस्त आनन्द इस बात में है कि हम वही पूरी तरह कर पायें जो करने को नियति प्रदत्त है, डेस्टिनी द्वारा निर्धारित है और प्रभु उत्प्रेरित है, अन्यथा जीवन में कभी शान्ति नहीं मिल सकती, आनंद नहीं मिल सकता । जीवन का आनन्द एक ही बात से मिलता है कि जो फूल हममें खिलने को थे वे खिल जायं, जो गीत हमसे पैदा होने को था वह पैदा हो जाय । लेकिन अगर ब्राह्मण, क्षत्रिय बन जाय तो कठिनाई में पड़ जायगा । क्योंकि शक्ति में उसे कोई रस नहीं है । इसलिए आप पायेंगे इस देश में ब्राह्मणों को इतना आदर दिया गया लेकिन ब्राह्मण ने आदरित, सम्मानित और सर्वश्रेष्ठ होने पर भी कोई शक्ति पायी नहीं । ब्राह्मण भिखारी का भिखारी रहा । वह दीन का दीन ही रहा । वह अपने झोपड़े में बैठ के ब्रह्म की खोज करता रहा । आदर उसे बहुत था । सम्राट उसके चरणों पर सिर रखते थे । राज्य उसके चरणों में लोट सकते थे । लेकिन इससे उसे कोई मतलब न रहा । वह खोज में लगा

रहा ब्रह्म की, दूर जंगल में बैठकर। पागल रहा होगा हम कहेंगे, जब सम्राट ही पैर पर सिर रखने आया था, तो कुछ मांग ही लेना था।

कणादि के जीवन में कथा है। वह ब्राह्मण का टाइप है। नाम ही कणादि पड़ गया है, इसलिए कि कभी इतना अनाज भी घर में न हुआ कि संग्रह कर सके। रोज खेत में कण-कण बीन ले। कणों को बीनने की वजह से नाम पड़ गया कणादि। सम्राट को खबर लगी कि कणादि कण बीन-बीन कर खेतों के खा रहा है। सम्राट ने आज्ञा दी कि भरो रथों को धन-धान्य से। चलो कणादि के रास्ते। बहुत धन-धान्य को लेकर सम्राट पहुचा। कणादि के चरणों में सिर रखा और कहा कि मैं बहुत धन-धान्य ले आया हूं। दुःख होता है कि मेरे राज्य में आप हैं और आप कण बीन-बीनकर खायें। आप जैसा महर्षि और कण बीने खेतों में तो मेरा अपमान होता है। कणादि ने कहा, क्षमा करो। खबर भेज देते, इतना कष्ट क्यों किया। मैं तुम्हारा राज्य छोड़कर चला जाता। सम्राट ने कहा, आप क्या कहते हैं? कैसी बात कहते हैं? आप मेरी बात नहीं समझे। कणादि तो उठ के खड़े हो गये। ज्यादा तो कुछ था ही नहीं, जो दो-चार किताबें थीं बांधने लगे। सम्राट ने कहा, आप यह क्या करते हैं? कणादि ने कहा, तेरे राज्य की सीमा कहां है वह बता। उस सीमा को छोड़ बाहर जाऊं। क्योंकि मेरे कारण तू दुःखी होगा तो बड़ा बुरा है। सम्राट ने कहा, यह मेरा मतलब नहीं है। मैं तो सिर्फ यह निवेदन करने आया कि बहुत धन-धान्य लाया हूं वह स्वीकार कर लें। कणादि ने कहा, उसे तू वापस ले जा, क्योंकि उस धन-धान्य की व्यवस्था, सुरक्षा और सुविधा कौन करेगा? उसकी देख-रेख कौन करेगा? हमें फुर्सत नहीं है। हम अपने काम में लगे हैं। थोड़ी सी फुर्सत मिलती है, सुबह घूमने निकलते हैं। उसी में खेत से कुछ दाने बीन लाते हैं तो काम चल जाता है। कोई झंझट हमें है नहीं। तू यह सब वापस ले जा, इसकी फिक्र कौन करेगा? और इसकी फिक्र करें कि हम अपनी फिक्र करें जिस खोज में हम लगे हैं। तू जल्दी कर और वापस जा। दोबारा इस तरफ मत आना। अगर आना हो तो खबर कर देना। हम राज्य छोड़कर चले जायेंगें। हम कहीं भी कण बीन लेंगे, सभी जगह मिल जायेंगे।

यह जो आदमी है इसे कण बीनने में सुविधा मालूम पडती है, क्यों कि कोई व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है, कोई मैनेजमेन्ट में नाहक समय जाया नहीं करना पड़ता है, नहीं तो बहुत मालिक घूम फिर के मैनेजर ही रह जाते हैं। लगते हैं मालिक, लेकिन होते हैं कुल जमा मैनेजर। इंडोकारनेगी अमरीका का अरबपति मरा तो उसने अपने सेक्रेटरी से पूछा, ऐसे ही मजाक में,

कि अगर दोबारा जिन्दगी फिर से हम दोनों को मिले तो तू मेरा फिर से सेक्रेटरी होना चाहेगा कि तू इंडोकारनेगी होना चाहेगा और मुझको सेक्रेटरी बनाना चाहेगा ? सेक्रेटरी ने कहा—आप नाराज तो न होंगे ? इंडोकारनेगी ने कहा– नाराज क्यों होऊंगा। बिल्कुल स्वाभाविक है तू इंडोकारनेगी बनना चाहेगा। उसने कहा—माफ करें, मैं यह नहीं कह रहा। मैं यह कह रहा हूं कि मैं फिर सिक्रेटरी ही होना चाहूंगा। इंडोकारनेगी ने कहा––पागल, तू इंडोकारनेगी नहीं बनना चाहता? उसने कहा, भूल के भी नहीं। आपको जब तक नहीं जानता था तब तक कभी भगवान से प्रार्थना भी कर सकता था। अब कभी नहीं कर सकता। उसने पूछा, कारण क्या है? सेक्रेटरी ने कहा––मैंने अपनी डायरी में कारण नोट किया है। उसने अपनी डायरी में लिख छोड़ा था, हे परमात्मा ! भूल के मुझे कभी इंडोकारनेगी मत बनाना। क्योंकि इंडोकारनेगी अपने दफ्तर में सुबह नौ बजे आता है, चपरासी दस बजे आते हैं, क्लर्क साढ़े दस बजे आते हैं, मैनेजर ग्यारह बजे आता है, डायरेक्टर्स एक बजे आते हैं, डायरेक्टर्स तीन बजे चले जाते हैं। चार बजे मैनेजर चला जाता है। फिर क्लर्क्स चले जाते हैं, फिर चपरासी चले जाते हैं। इंडोकारनेगी साढ़े सात को शाम को जाता है। मुझे कभी इंडोकारनेगी मत बनाना। अब यह इंडोकारनेगी दस अरब रुपये छोड़ के मरा है लेकिन वहां मालिक नहीं था, मैनेजर भी नहीं था, चपरासी भी नहीं था। चपरासी भी दस बजे आता है। चपरासी भी शाम को चला जाता है। इंडोकारनेगी चपरासी से पहले मौजूद है। चपरासी के बाद दफ्तर छोड़ रहा है। आखिर यह आदमी मैनेज कर रहा है किस के लिए? नहीं, लेकिन इसका भी अपना टाइप है। वह तीसरा टाइप है। धन वैश्य का टाइप है। इसे प्रयोजन नहीं है––न ज्ञान से, न शक्ति से। इसे महाराज्यों से प्रयोजन नहीं है। इसे ब्रह्म से कोई वास्ता नहीं है। इसे ब्रह्माण्ड से कुछ लेना-देना नहीं है। दूर के तारों से मतलब नहीं, पास के रुपये काफी हैं। यह तिजोरी बड़ी करता जायगा। यह भी उसका टाइप है। यह वैश्य का टाइप है। धन इसकी आकांक्षा है।

चौथा एक शूद्र का टाइप है। श्रम उसकी आकांक्षा है। ऐसा नही है, जैसा हम साधारणतः समझाये जाते है कि कुछ लोगों को हम मजबूर कर देते हैं श्रम के लिए। ऐसा नहीं है। अगर कुछ लोगों को श्रम न मिले तो उनके लिए जीना मुश्किल हो जायगा। खाली सभी लोग नहीं रह सकते। अभी अमरीका में कठिनाई आनी शुरू हुई है। क्योंकि श्रम का काम समाप्त होने

के करीब है। काम मशीनें करने लगी हैं। अमरीका के सब बड़े विचारशील लोग, सब इस चिन्ता में पड़े हैं कि दस पन्द्रह साल में सारा आटोमैटिक इन्तजाम हो जायगा, सब मशीनें काम कर देंगी, तो सवाल यह है कि लोग काम मांगेंगे तो हम काम कहां से देंगे। और लोग काम मांगेंगे, क्योंकि लोग बिना काम रह नहीं सकते। कुछ लोग तो रह ही नहीं सकते बिना काम। अमरीका में दो दिन की छुट्टी हो गयी सप्ताह में तो आप जान कर हैरान होंगे कि अमरीका में एक कहावत है कि दो दिन की छुट्टी के बाद आदमी इतना थक जाता है कि एक सप्ताह विश्राम की जरूरत पड़ती है। यह बड़ी मुश्किल बात है। दो दिन की छुट्टी के बाद आदमी इतना थक जाता है कि सात दिन की विश्रांति की जरूरत पड़े? तो छुट्टी विश्राम की है आपको? नहीं, छुट्टी में लोगों ने हजारों सैंकड़ों मील कार चलायी, बीच पर पहुंचे। एक नहीं पहुंचा, नेक टू नेक कारें एक दूसरे में फंसी रहीं। लाखों कारें पहुंच गयीं। पूरी बस्ती समुद्र के तट पर पहुँच गयी। बस्ती से भागे थे, लेकिन पूरी बस्ती भाग रही है। वह पूरी बस्ती वहां मौजूद हो गयी। इससे तो अच्छा घर रह जाते तो घर में थोड़ा सन्नाटा रहता। क्योंकि सारी बस्ती बीच पर आ गयी, अब सारी बस्ती बीच पर रही, फिर बीच से भागे। सारे अमरीका में छुट्टी के दिन सर्वाधिक दुर्घटनाएं हो रही हैं। क्योंकि छुट्टी के दिन लोग बिल्कुल शैतानी के काम में लग जाते हैं। क्या करें? फुर्सत खतरनाक है। जब तक मिली नहीं, तब तक आपको पता नहीं। अगर पूरी फुर्सत मिल जाय तो खतरनाक है। तब आपको पता चलेगा कि श्रम करने वाला भी एक टाइप है, जो बिना श्रम किये नहीं रह सकता।

कृष्ण कहते हैं, ये चार गुण से विभाजित लोग हैं। शायद इन चारों की जरूरत भी है। क्योंकि सारे लोग ज्ञान खोजें तो जगत अस्तित्व में नहीं रह जाय। सारे लोग शक्ति खोजें तो सिवाय युद्धों के कुछ भी न हो। सारे लोग धन खोजें तो आदमी मर जाय और तिजोरियां बचें, और सारे लोग श्रम करें तो कोई संस्कृति, कोई सभ्यता, कोई कला, कोई विज्ञान, कोई दर्शन, कोई धर्म कुछ भी न हो। ये चारों कांप्लीमेंटरी हैं। इन चारों के बिना जगत नहीं हो सकता। इसलिए कृष्ण कहते हैं ये चार—गुण से और कर्म से। भीतर तो गुण हैं, उन गुणों से जुड़े हुए संयुक्त कर्म हैं। गुण ही बाहर प्रगट होकर कर्म बन जाते हैं। भीतर जिनका नाम गुण है, बाहर उनका नाम कर्म है। जब बीज में होते हैं तब उनका नाम गुण है और जब प्रगट होकर संबंधित होते

हैं तो उनका नाम कर्म हो जाता है। गुण कर्म से मैंने चार में बांटा, कृष्ण कहते हैं। ये चार का विभाजन कृष्ण की दृष्टि में ऊंचे–नीचे का विभाजन नहीं है। कृष्ण की दृष्टि में इसमें कोई विषमता नहीं है। इसमें कोई ऊपर और कोई नीचे नहीं है। ये चार जीवन के, शरीर के चार अंग हैं समान मूल्य के। एक के भी बिना तीन नहीं हो सकते। विकृति उस दिन आनी शुरू हुई जिस दिन हमने विषमता बनायी। जिस दिन हमने कहा, नहीं, कोई ऊपर हो और कोई नीचे। नहीं, श्रम भी उतना ही ऊपर है जितना ज्ञान। अगर किसी को ज्ञान की पिपासा है और किसी को श्रम की पिपासा है तो श्रम की पिपासा का भी हकदार है आदमी कि अपनी पिपासा को पूरी करे। ज्ञान की पिपासा का भी हकदार है आदमी कि अपनी पिपासा को पूरी करे। ओर दोनों ही पिपासाएँ विराट से मिली हैं, जन्म से मिली हैं, 'बिल्टइन' हैं इसलिए गौरव की बात क्या है? अगर मुझे सत्य की खोज की आकांक्षा है तो इसमें गौरव की बात क्या है? यह मुझे वैसे ही मिली है, वरदान है परमात्मा का, जैसे एक आदमी को श्रम की क्षमता मिली है। इसमें अगौरव क्या है? कोई नीचे ऊपर नहीं है। वह उसका 'बिल्टइन' प्रोग्राम है। एक फूल गुलाब बनने को हुआ है, एक फूल कमल बनने को हुआ है, एक फूल जुही बना है, एक फूल चमेली बना है। दुनिया सुन्दर है। जितने ज्यादा फूल हैं उतनी ही सुन्दर है। लेकिन गुलाब गुलाब होने की मजबूरी में है, कमल कमल होने की मजबूरी में है। कमल का कमल होना कमल का गौरव नहीं है, वह कमल की नियति है, डेस्टिनी है। गुलाब का गुलाब होना ही गुलाब की डेस्टिनी है, और एक घास के फूल का घास का फूल होना भी उसकी अपनी डेस्टिनी है। मजे की बात यह है कि जब घास का फूल अपने पूरे सौंदर्य में खिलता है तो किसी गुलाब के फूल से पीछे नहीं होता। आपके लिए होगा, क्योंकि बाजार में बेचेंगे तो घास के फूल का दाम नहीं मिलेगा। लेकिन घास के फूल के लिए, खुद घास के फूल के लिए? घास का फूल जब पूरी तरह खिलता है तो उतनी ही इक्स्टेसी में, उतने ही हर्षोन्माद में होता है जितना कि गुलाब का फूल अपनी पूरी पंखुड़ी को खिला कर नाचता है सूरज की रोशनी में। दोनों अपने आनन्द में होते हैं। और सूरज घास के फूल से यह नहीं कहता कि शूद्र हट, मैं सिर्फ गुलाब के फूलों के लिए आया हूं। नहीं, सूरज उतने ही आनन्द से बरसता है घास के फूल पर। चांद उतने ही आनन्द से अमृत बरसाता है, हवाएँ उतने ही आनन्द से घास के फूल को भी नृत्य और थपकी देती हैं

जितनी गुलाब के फूल को देती हैं। इसमें कोई भेद भाव नहीं है।

जगत के अस्तित्व के भीतर कोई भेद भाव नहीं है। गुण भेद है, भेद भाव नहीं है। कोई नीचा ऊपर नहीं है। विभाजन है, शत्रुता नहीं है। कोई एक दूसरे की कांफ्लिक्ट में नहीं है। संघर्ष नहीं है, सहयोग है। कृष्ण के लिए, जिस दिन वर्ण की उन्होंने बात कही, चारों वर्ण एक अन्तर सहयोग था, एक 'इनर कोआप्रेशन' था। एक 'आर्गनिक यूनिटी' थी। चारों के बीच एक शरीर संबंध था। इसलिए कृष्ण ने पीछे शरीर से तुलना भी की है कि कोई सिर है, कोई पैर है, कोई पेट है। अंग की भांति है वर्ण भी। कोई नीचे ऊपर नहीं है। लेकिन नीचे ऊपर दिखायी पड़ता है। क्योंकि उन्होंने कहा कि सिर, सिर ऊपर मालूम होता है। पैर, पैर नीचे मालूम होते हैं। लेकिन यह ऊपर नीचे होना फिजिकल है। ऊपर नीचे होना मूल्यांकन नहीं है यह। इसमें कोई वैल्युएशन नहीं है कि पैर नीचा है, ऐसा नहीं है। अगर नीचा है तो उसका कुल मतलब इतना है कि स्पेस में सिर ऊपर मालूम हो रहा है, पैर नीचे। लेकिन वह भी सब बातचीत काल्पनिक है। एक आदमी किसी की छत पर खड़े होकर देखे तो आपका सिर नीचे हो जाता है, उसका सिर ऊंचा हो जाता है। छोटे बच्चे करते हैं। कुर्सी पर खड़े हो जाते हैं बाप के पास और कहते हैं हम तुमसे बड़े हैं। फिजिकल है – है भी बड़ा जब ऊपर हो गया। अगर सिर ऊपर है पैर से तो बेटा कुर्सी पर खड़े होकर बड़ा है। यह छिपकली जो आपकी छत पर चल रही है आपके सिर के ऊपर है। छिपकली के बाबत क्या ख्याल है? ब्राह्मण के ऊपर छिपकली चल रही है। छिपकली बहुत ऊपर है। ये ऊपर नीचे की बचकानी बातें हैं। इसमें कुछ भेद, कोई मूल्यांकन कृष्ण के मन में नहीं है। किसी के मन में नहीं था। हमारे मन में पैदा हुआ। हमने थोपा। कृष्ण कहते हैं, गुण और कर्म के अनुसार मैंने विभाजित किया व्यक्तियों को। गुण भीतरी क्षमता, कर्म बाहरी अभिव्यक्ति, कर्म मैनीफेस्टेशन है। ध्यान रहे, गुण जब कर्म बनता है तभी दूसरों को पता चलता है। जब तक गुण गुण रहता है तब तक किसी को पता नहीं चलता। दूसरों को नहीं, खुद को भी पता नहीं चलता। खुद को भी पता तभी चलता है जब गुण कर्म बनता है। जब एक व्यक्ति अपने को प्रगट करता है अपने कर्मों में, तभी आपको भी पता चलता है और उसको भी पता चलता है कि वह क्या है। गुण बीज की तरह छिपा हुआ अस्तित्व है। कर्म वृक्ष की तरह प्रगट अस्तित्व है। गुण और कर्म के अनुसार विभाजित मनुष्य है। इस विभाजन को कभी भी तोड़ा नहीं जा सकता। इस विभाजन को इन्कार किया जा सकता है। कानून बनाया जा सकता है कि ऐसा कोई विभाजन नहीं है। विधान बनाया जा सकता है, ऐसा कोई विभाजन नहीं। लेकिन

विभाजन जारी रहेगा। अगर हम एक कानून बना लें, और कोई कठिन नहीं है कि हम एक कानून बना दें कि स्त्री पुरुषों के बीच कोई विभाजन नही है। कानून बनाया जा सकता है, मेजारिटी चाहिए और हमेशा मेजारिटी हर तरह की बेवकूफी के लिए मिल सकती है। अगर आपकी धारा सभा में आपकी एसेम्बली और पार्लियामेंट में बहुमत तय कर ले कि स्त्री पुरुष में कोई फासला नहीं, तो कानून बन सकता है, लेकिन कानून बनने से प्रकृति नहीं बदल जाती। कानून बन भी गये हैं करीब करीब। कानून ही नहीं बन गये, पश्चिम के मुल्कों ने स्त्री और पुरुष के बीच के फासले को गिराना भी शुरू कर दिया। तो पुरुष स्त्रियों जैसे होने की कोशिश में लग गये हैं ताकि एक दूसरे की तरफ थोड़ा थोड़ा चलें तो फासला कम हो जाय। स्त्रियां पुरुषों जैसी होने लग गयी हैं। स्त्रिया पुरुषों के कपड़े पहन रही हैं, पुरुष स्त्रियों के कपड़े पहनने की कोशिश में लगे हैं। स्त्रियां बाल कटा रही हैं, पुरुष बाल लम्बे कर रहे हैं। ऐसा दोनों थोड़ा थोड़ा चलेंगे तो कहीं मिलन हो जायगा, इस दशा में। लेकिन अगर स्त्रियों और पुरुषों को बिल्कुल एक जैसी शकल का बना कर खड़ा कर दिया जाय तो भी नियति का जो फासला है वह नहीं गिर जाता। लेकिन उस फासले में कोई ऊंच नीच नहीं है। वह 'वर्टिकल नहीं है हॉरीजांटल' है। फासला ऊंचा नीचा नहीं है।

ठीक गुण और कर्म से भी जो भेद है वह नियतिगत स्वभावगत है। उस स्वभावगत भेद को कृष्ण कहते हैं, मैंने ही निर्मित किया। इस विभाजन को स्वाभाविक, परमात्मा से आया हुआ विभाजन वे कह रहे हैं। 'इन बॉर्न', 'इन बिल्ट', प्रकृति में ही छिपा हुआ – यही उनका अर्थ है। और यह वह इसीलिए कह रहे हैं ताकि अर्जुन को ठीक से ख्याल आ जाय कि उसका अपना गुण कर्म क्या है। और वह उसके स्मरण को ध्यान में लेकर कर्म में सक्रिय हो सके, गुणों को पहचान के कर्म कर सके। (गुण और कर्म का मेल हो जाय तो व्यक्ति के जीवन में एक हार्मनी, एक अंतर संगीत पैदा हो जाता है। गुण और कर्म का भेद टूट जाय तो व्यक्ति के जीवन में विसंगीत उत्पन्न हो जाता है।)

इस वर्ण व्यवस्था को लेकर आज से अगर हम तीन हजार साल पीछे लौट जायं तो मैं कहूंगा कि यदि शूद्र के घर पैदा हुआ व्यक्ति हो तो उसे शूद्र का काम ही निभाना चाहिए। लेकिन आज यह न कहूंगा। इसके कारण हैं। तब भारत ने वर्ण की इस व्यवस्था को वैज्ञानिक रूप से बांटा था और विभाजन स्पष्ट थे। शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण के बीच कोई आवागमन न था, कोई विवाह न था, कोई यात्रा न थी, खून अमिश्रित, अलग अलग था। तो जैसे ही कोई आत्मा मरती उसे चुनने के लिए स्पष्ट मार्ग थे मरने के बाद। एक आत्मा जैसे ही मरती वह अपने गुण कर्म

के अनुसार शूद्र के घर पैदा होती या ब्राह्मण के घर पैदा होती। भारत को, आत्मा को नया जन्म लेने के लिए चैनेल्स दिये हुए थे जो पृथ्वी पर कभी कहीं भी नहीं दिये गये। इसलिए भारत ने मनुष्य की आत्मा और जन्म की दृष्टि से गहरे मनोवज्ञानिक प्रयोग किये जो पृथ्वी पर और कहीं भी नहीं हुए। जैसे कि एक नदी बहती है। नदी का बहना और है, अनियंत्रित है। फिर एक नहर बनाते हैं, नहर का बहना और है– नियंत्रित और व्यवस्थित है। भारत ने समाज के गुण कर्म के आधार पर नहरें बनायीं नदियों की जगह – बहुत व्यवस्थित। उन व्यवस्थित नहरों का विभाजन इतना साफ किया कि आदमी मरे तो उसकी आत्मा को चुनाव का सीधा स्पष्ट मार्ग था। वह अपने योग्य जन्म को ग्रहण कर ले। इसलिए कभी ऐसा होता कि करोड़ में एक शूद्र ब्राह्मण के गुण का पैदा होता। कभी ऐसा होता कि करोड़ में एक ब्राह्मण शूद्र के गुण का पैदा होता। अपवाद। अपवाद के लिए नियम नहीं बनाये जाते। और जब कभी ऐसा होता तो उसके लिए नियम की चिन्ता करने की जरूरत नहीं होती थी। कोई विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण में प्रवेश कर जाता। कोई नियम की चिन्ता न थी। क्योंकि जब कभी ऐसा अपवाद होता तो प्रतिभा इतनी स्पष्ट होती कि उसे रोकने का कोई कारण न होता था। लेकिन वह अपवाद था, उसके लिए नियम बनाने की कोई जरूरत न थी। वह बिना नियम के काम करता था। लेकिन आज स्थिति वैसी नहीं है।

भारत की वह जो विभाजन की व्यवस्था थी आत्मा के चुनाव की, वह बिखर गयी। अच्छे भले लोगों ने बिखरा दी। कई दफे भले लोग ऐसे बुरे काम करते हैं जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि जरूरी नहीं कि भले लोगों की दृष्टि बहुत गहरी ही हो। और जरूरी नहीं कि भले लोगों की समझ बहुत वैज्ञानिक ही हो। भला आदमी भी छिछला हो सकता है। इसलिये उखड़ गयी सारी व्यवस्था। अब नहरें साफ नहीं हैं। हालत नदियों जैसी हो गयी। नहरें भी हैं, पर खण्डहर हो गयीं। उनमें से पानी इधर उधर बह जाता है। अब कोई व्यवस्था साफ नहीं है। अब इतनी साफ नहीं कही जा सकती यह बात। लेकिन नियम वही है। नियम में अन्तर नहीं पड़ता। जो अन्तर पड़ा है वह व्यवस्था के जीर्ण जर्जर हो जाने की वजह से है। आज भी मौलिक रूप से सिद्धान्ततः जो व्यक्ति जहां पैदा हुआ हो, बहुत संभावना है, सौ में नब्बे मौके यही है कि अपने जीवन की व्यवस्था को वह उन्हीं मार्गों से खोजे तो शीघ्रता से शांति को, और विश्राम को उपलब्ध हो सकेगा अन्यथा बेचैनी में और तकलीफ में पड़ेगा। आज समाज में जो इतनी बेचैनी और तकलीफ है उसके पीछे वर्ण का टूट जाना भी एक कारण है।

एक सुनियोजित व्यवस्था थी। चीजें अपने अपने विश्राम से अपने मार्ग को पकड़ लेती थीं। अब हरेक को मार्ग खोजना पड़ेगा, निर्णायक बनना पड़ेगा। निर्णीत करना पड़ेगा। उस निर्णय में बड़ी बेचैनी, बड़ी प्रतिस्पर्धा, बड़ा कम्पटीशन, बड़ी स्पर्धा होगी। बड़ी चिन्ता और बड़ी बेचैनी पैदा होगी। कुछ भी तय नहीं है, सब तय करना है। और आदमी की जिन्दगी करीब करीब तय करने में नष्ट हो जाती है। फिर भी कुछ तय नहीं हो पाता। लेकिन टूट गयी व्यवस्था, मैं समझता हूं, अब लौट आना करीब करीब मुश्किल है। क्यों ? क्योंकि भारत ने जो एक छोटा सा प्रयोग किया था वह लोकल था, स्थानीय था, भारत की सीमा के भीतर था। आज सारी सीमाएं टूट गयीं। आज सारी जमीन इकट्ठी हो गयी। जिन कौमों ने कोई प्रयोग नहीं किये थे वर्ण के, वे सारी कौमें आज भारत की कौम और उन सब की दृष्टियां हमारी दृष्टियों के साथ इकट्ठी हो गयीं। आज सारी दुनिया, गैर वर्ण वाली दुनिया बहुत बड़ी है। और वर्ण का प्रयोग करने वाले लोग बहुत थोड़े हैं। और उन थोड़े लोगों में भी जो वर्ण के समर्थक हैं वे नासमझ हैं। और जो वर्ण के विरोधी हैं बड़े समझदार हैं। वर्ण के समर्थक बिल्कुल नासमझ रह गये हैं। वह सिर्फ इसलिए समर्थन किये जाते हैं कि उनके शास्त्र में लिखा है। समर्थकों के पास वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है। न उनके पास कोई मनोवैज्ञानिक पहुँच है कि वह समझें कि बात क्या है। वह सिर्फ इसलिए दोहराये चले जाते हैं कि बाप-दादों ने कहा था। उनकी अब कोई सुनेगा नहीं। अब कोई चीज इसलिए सही नहीं होगी भविष्य में कि बाप-दादों ने कही थी। डर तो यह है कि अगर बाप-दादों का बहुत नाम लिया तो चीज सही भी हो तो गलत हो जायगी। बाप-दादों ने कहा था तो जरूर, कुछ गलत कहा होगा, आज हालत ऐसी है। और जो आज विरोध में हैं वर्ण की व्यवस्था के, वे बड़े समझदार समझे जाते हैं। समझदार, मतलब ज्ञानी नहीं। समझदार मतलब, बड़े तर्कयुक्त हैं। वे हजार तर्क उपस्थित करते हैं। उनके तर्कों का जवाब पुरानी परम्परा के लोगों के पास बिल्कुल नहीं है। और ऐसे लोग आज न के बराबर हैं जिनके पास आधुनिक तर्क की चिन्तना हो, और पुरानी अंतर्दृष्टि हो। ऐसे लोग न के बराबर हैं इसलिए कठिनाई में पड़ गयी है बात। अगर मेरा वश चले तो मैं चाहूंगा कि वह जीर्ण जर्जर व्यवस्था फिर से सुस्थापित हो जाय। उदाहरण के लिए दो एक बातें आपसे कहूं कि कई दफे कैसी कठिनाई होती है।

आज से पचास साल पहले सारे योरोप और अमरीका में बाल विवाह की व्यवस्था टूटी। हिंदुस्तान में भी। हिन्दुस्तान के जो समझदार हैं, हिन्दुस्तान के समझदार सौ साल से पिछलग्गू समझदार हैं, उनके पास अपनी प्रतिभा नहीं है। जो

पश्चिम में होता है वह उसकी दोहाई यहां देने लगते हैं । लेकिन पश्चिम में जो होता है, पश्चिम के लोग तर्क का पूरा इन्तजाम करते हैं । उन्होंने भी दोहाई दी कि बाल विवाह बुरा है । फिर हमने भी बाल विवाह के खिलाफ कानून बनाये । व्यवस्था तोड़ी । आज कोई बाल विवाह करता भी होगा तो अपराधी है । लेकिन आप जानकर हैरान होंगे कि विगत पन्द्रह वर्षों में अमरीका के सौ बड़े मनोवैज्ञानिकों के एक आयोग ने रिपोर्ट दी है और रिपोर्ट में कहा है कि अगर अमरीका को पागल होने से बचाना है तो बाल विवाह पर वापस लौट जाना चाहिए । हिन्दुस्तान के समझदारों को अभी पता नहीं चला । इनको पता भी पचास साल बाद चलता है । क्यों लौट जाना चाहिए बाल विवाह पर ? पचास साल में ही अनुभव विपरीत हुए । सोचा था कुछ और, हुआ कुछ और ।

पहला अनुभव तो यह हुआ कि बाल विवाह ही थिर हो सकता है । चौबीस साल के बाद किये गये विवाह थिर नहीं हो सकते । क्योंकि चौबीस साल की उम्र तक दोनों ही व्यक्ति स्त्री और पुरुष इतने सुनिश्चित हो जाते हैं कि फिर उन दो के बीच तालमेल नहीं हो सकता । वे दोनों अपने अपने ढंग में इतने ठहर जाते हैं, फिक्स्ड हो जाते हैं कि फिर समझौता नहीं हो सकता । इसलिए पश्चिम में तलाक बढ़ते चले गये । आज अमरीका में पैंतालिस प्रतिशत तलाक है । करीब करीब आधे तलाक हैं । जितनी शादी होती हैं हर साल उससे आधी शादी हर साल टूटती हैं । यह संख्या बढ़ती चली जायगी । बाल विवाह एक बहुत मनोवैज्ञानिक तथ्य था । तथ्य यह था कि छोटे बच्चे झुक सकते हैं, लोच है उनमें । एक युवक और एक युवती जब पक गये तब उनमें झुकना असंभव हो जाता है । तब वह लड़ ही सकते हैं, झुक नहीं सकते । टूट सकते हैं, झुक नहीं सकते । इसलिए आज पश्चिम में पुरुष और स्त्री दुश्मन की भांति खड़े हैं । पति और पत्नी एक तरह का युद्ध है, एक तरह की लड़ाई है । एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक ने एक किताब लिखी है–'इन्टीमेट वार'– आन्तरिक युद्ध । प्रेमपूर्ण युद्ध, ऐसा अर्थ करें । प्रेमपूर्ण युद्ध यानी विवाह । विवाह के ऊपर किताब है कि दो आदमी प्रेम का बहाना करके साथ साथ लड़ते हैं–चौबीस घण्टे । इसका कारण ? इसका कारण कुल इतना है, कोई बेटा अपनी मां को बदलने को कभी नहीं सोचता कि दूसरी मां मिल जाती तो अच्छा होता । कोई बेटा अपने बाप को बदलने को नहीं सोचता कि दूसरा बाप मिल जाता तो बहुत अच्छा होता । कोई भाई अपनी बहन को बदलने का नहीं सोचता कि दूसरी बहन मिल जाती तो अच्छा होता । क्यों ? क्या दूसरी बहनें अच्छी नहीं मिल सकतीं ? क्या दूसरे बाप अच्छे नहीं मिल सकते ? क्या दूसरी मां के अच्छे होने में कोई असुविधा है इतनी बड़ी पृथ्वी पर ?

नहीं, यह ख्याल ही नहीं आता । क्योंकि इतने बचपन में, जब कि मन बहुत नाजुक और कोमल होता है, बच्चा मां से राजी हो जाता है । बाल विवाह के पीछे एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है कि जिस तरह मां से बच्चा राजी हो जाता है उसी तरह वह पत्नी से भी राजी हो जाता है । फिर वह सोचता नहीं कि दूसरी पत्नी भी हो । जैसे मां दूसरी हो, ऐसा नहीं सोचता, पिता दूसरा हो ऐसा नहीं सोचता, वैसे ही पत्नी भी उसके साथ साथ इतनी निकटता से बड़ी होती है कि स्वभावतः दूसरी पत्नी हो या दूसरा पति हो यह ख्याल ही नहीं उठता । लेकिन चौबीस साल या पच्चीस साल या तीस साल की उम्र में शादी होगी तो यह बात बिल्कुल असंभव है कि ख्याल न उठे । जिसमें न उठे, वह आदमी बीमार होगा । उसका दिमाग खराब होगा । तीस साल की उम्र तक जिस युवक ने हजार स्त्रियों को देखा पहचाना, हजार बार सोचा कि इससे शादी करूं कि उससे करूं, कि इससे करूं कि उससे करूं । तीस साल के बाद शादी की, फिर कलह और उपद्रव शुरू हुआ । उसे ख्याल आयेगा कि पड़ोस की स्त्री से शादी हो जाती तो ज्यादा बेहतर होता ।

मैंने सुना है, एक पत्नी अपने पति को सुबह दफ्तर विदा करते वक्त कह रही है कि आपका व्यवहार ठीक नही है । सामने देखो, सामने की पोर्च में देखो । पति ने उस तरफ आंख उठाकर देखा । पत्नी ने कहा देखते हैं– पति अपनी पत्नी से विदा ले रहा है तो कितना गले लग के चुम्बन दे रहा है । ऐसा तुम कभी नहीं करते ! उसके पति ने कहा– मेरी उस औरत से कोई पहचान ही नहीं है । वैसा करने का तो मेरा भी मन होता है । यह अमरीका में मजाक घट सकता है, कल भारत में भी घटेगा । लेकिन भारत ऐसा पहले कभी सोच नहीं सकता था, इसको मजाक में भी नहीं सोच सकता था । यह सिर्फ बेहूदगी मालूम पड़ती थी, यह मजाक भी नहीं मालूम पड़ सकता था । इसके कारण थे । कारण बहुत साइकोलाजिकल थे, बहुत गहरे थे ।

फिर एक और ध्यान में लेने की बात है कि बाल विवाह का मतलब है– दो बच्चों में सेक्स का ख्याल नहीं उठता, सेक्स का कोई सवाल नहीं होता, कामवासना का कोई सवाल नहीं होता । दो छोटे बच्चों की शादी कर दी तो उनके बीच कोई कामवासना नहीं होती । कामवासना आने के पहले उनके बीच मैत्री बन जाती है । लेकिन जब दो बच्चे बच्चे नहीं होते, जवान होते हैं, उनकी हम शादी करते हैं, तो मैत्री नहीं बनती पहले, पहले कामवासना आती है । और जब कामवासना पहले आयेगी तो संबंध बहुत जल्दी विकृत और घृणित हो जायेंगे । उनमें कोई गहराई न होगी, छिछले होंगे । और जब कामवासना चुक जायेगी तो संबंध टूटने के करीब पहुंच जायेंगे । क्योंकि और तो कोई संबंध नहीं है । जिन दो बच्चों ने काम-

वासना के जगने के पहले मित्रता स्थापित कर ली, कल कामवासना भी विदा हो जायगी तो भी उनकी मित्रता बचेगी; लेकिन जिन दो जवानों ने कामवासना के बाद मित्रता स्थापित की, उनकी मित्रता स्थापित होती नहीं। मित्रता सिर्फ कामवासना का बहाना होती है। जब कल कामवासना क्षीण हो जायगी तो मित्रता टूट जायगी। आज अमरीका में किन्से जैसा मनोवैज्ञानिक कहता है कि बाल विवाह पर वापस लौट जाना चाहिए, अन्यथा पूरा समाज रोग ग्रस्त हो जायगा। मैं आपसे कहता हूं, पचास साल बाद दुनिया के मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि वर्ण व्यवस्था पर वापस लौट जाना चाहिए। लेकिन पचास साल बाद कहेंगे वे, और हिंदुस्तान के विचारक तो सौ साल बाद कह सकेंगे, जब वे कह चुकेंगे तब इनकी बुद्धि में थोड़ा सा हलन-चलन होगा।

वर्ण व्यवस्था बहुत गहरी मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है। अगर आज के मनोविज्ञान के सारे तथ्य आपके ख्याल में आ जायं तो बहुत हैरान होंगे। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तीन वर्ष की उम्र में बच्चा अपनी जिन्दगी का पचास प्रतिशत ज्ञान सीख चुका होता है। अन्दाजा लगाइये पचास प्रतिशत ! अब बाकी जिन्दगी में., सत्तर साल में पचास प्रतिशत ही सीखेगा। और यह भी मजे की बात है कि यह जो पचास प्रतिशत तीन साल की उम्र में सीखा गया है यह फाउन्डेशन है। यह बुनियाद है। इसको अब कभी नहीं बदला जा सकता। बाद में जो सीखेगा वह इसके ऊपर बनाया हुआ भवन है जो बदला जा सकता है। जिसे बदला जा सकता है वह बुनियाद नहीं है। और अगर इसकी बुनियाद बदली तो यह बच्चा विक्षिप्त हो जायगा। इसलिए अगर वर्ण की व्यवस्था यह कहती है कि शूद्र के घर में पैदा हुआ बच्चा अपने ही परिवार की व्यवस्था, अपने ही जीवन के ढंग से अपने जीवन की नियति को पाने के प्रयास में लगे, ब्राह्मण का बच्चा अपनी ही नियति से, अपनी व्यवस्था से अपनी खोज में लगे तो बहुत मनोवैज्ञानिक है यह बात। क्योंकि तीन साल की उम्र में आधा ज्ञान पूरा हो जाता है और १३–१४ साल की उम्र तक सारा ज्ञान करीब करीब पूरा हो जाता है। यह जानकर आप चकित होंगे कि पिछले महायुद्ध में अमेरिका में मिलिट्री में भर्ती होने वाले स्नातकों, ग्रेजुएटों की मानसिक परीक्षाएं ली गयीं तो जो औसत उम्र मिली ग्रेजुएट्स की वह साढ़े तेरह साल है मानसिक उम्र। फौज में भर्ती होने वाले युनिवर्सिटी से निकले हुए स्नातकों की मानसिक उम्र इतनी निकली जितनी साढ़े तेरह साल के बच्चे की होती है। उनकी उम्र किसी की बाइस होगी, किसी की चौबीस, किसी की बीस– शारीरिक उम्र। लेकिन मानसिक उम्र साढ़े तेरह वर्ष निकली। तब

तो सारी दुनिया के मनोवैज्ञानिक चिंतित हो गये। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम सारी दुनिया की मानसिक उम्र निकालें तो नौ–दस साल से ज्यादा नहीं निकलेगी। इसका यह मतलब हुआ कि तेरह चौदह साल की उम्र तक आदमी का मन करीब करीब पक्का और मजबूत हो जाता है। अगर इस मन के विपरीत कुछ मार्ग उसने चुना तो उसकी जिंदगी फ्रस्ट्रेशन और विषाद का मार्ग होगी। लेकिन कठिनाई क्या है? कठिनाई इसमें नहीं है। शूद्र होने में कठिनाई नहीं है। ब्राह्मण होने में कठिनाई नहीं है। कठिनाई पैदा हुई, जिस दिन हमने समझा ब्राह्मण ऊपर है और शूद्र नीचे। उस दिन शूद्र के मन में भी वासना जगी कि मैं ऊपर जाऊं। उस दिन ब्राह्मण के मन में भी डर जगा कि मुझे कोई नीचे न उतार दे। तब चीजें स्वस्थ न रह गयीं, सब बीमार हो गयीं। अगर वर्ण की व्यवस्था कभी लौटेगी (और मुझे लगता है मनुष्य की जाति को अगर स्वस्थ होना हो तो लौटेगी) अगर कभी लौटेगी, तो ऊपर नीचे की तरह नहीं लौटेगी। चार सीढ़ियों पर चार आदमी खड़े हो जाते हैं। एक ऊपर की सीढ़ी पर, एक नीचे की सीढ़ी पर, दो बीच की सीढ़ियों पर। ऐसी सीढ़ी जैसी वर्ण की व्यवस्था नहीं लौटेगी। गीता के कृष्ण के मन में भी वैसी व्यवस्था नहीं है। किसी समझदार के मन में वैसी व्यवस्था नहीं रही। चार आदमी एक ही जमीन पर खड़े हैं, एक समतल भूमि पर, ऐसी व्यवस्था लौटेगी। वर्ण समतल भूमि पर खड़े हो सकें तो लौट सकते हैं। और तब प्रत्येक व्यक्ति को उसकी जिन्दगी जहां बड़ी हुई जैसी बड़ी हुई उसी मार्ग से खोज लेना शांति की दृष्टि से, आनन्द की दृष्टि से, संतोष की दृष्टि से अन्तत: चेतना की उपलब्धि की दृष्टि से उपयोगी है। और अगर यह यहां वहां जाता है– जैसे तकनीकी ढंग से इसे समझें तो यह ऐसा है कि कोई हमसे पूछे कि एक डाक्टर अगर वकालत करना चाहे तो हर्ज तो नहीं है कोई? एब्सर्ड है, क्योंकि अगर उसने डाक्टर होने की शिक्षा ली है और जिन्दगी के कीमती समय को डाक्टर होने में गँवाया है तो अब वकालत करने वह जायगा तो उपद्रव ही होने वाला है। कोई अदालत उसको आज्ञा न देगी कि आप वकालत करें। अदालत कहेगी कि वकील होने की ट्रेनिंग लें फिर से, तब लौटें। और तब भी कठिनाई होगी। क्योंकि जो भी ट्रेनिंग हमने ले ली उसको अनट्रेंड नहीं किया जा सकता। जो भी हमने जान लिया उसको भुलाया नहीं जा सकता। वर्ण की व्यवस्था एक बहुत तकनीकी व्यवस्था है। उसमें शूद्र के जीवन का अपना ढंग है, अपनी व्यवस्था है। ब्राह्मण के जीवन का अपना ढंग, अपनी व्यवस्था है, क्षत्रिय के जीवन का अपना

ढंग, अपनी व्यवस्था है। उस सारी व्यवस्था का प्रशिक्षण है। वह बचपन से घर में मिल रहा है। बच्चा बड़ा हो रहा है, प्रशिक्षण मिल रहा है। बच्चा बड़ा हो रहा है, मां के साथ, बाप के साथ, भाइयों के साथ, और प्रशिक्षण जारी है। उसकी ट्रेनिंग हो रही है, उसके खून, हड्डी, मांस, मज्जा में चीजें डाली जा रही हैं, पहुंच रही हैं। जब वह जवान होता है तब निर्मित हो चुका। अब उचित है कि जो उसके भीतर निर्मित हुआ है वह उस दिशा से ही खोजे। कठिनाई तो तब है जब उस दिशा से पाया न जा सके, लेकिन अवश्य पाया जा सकता है। कोई ब्राह्मण ऐसे किसी सत्य को नहीं पा गया है जो शूद्र शूद्र रह कर न पा सकता हो। कोई शूद्र ऐसी किसी शांति को नहीं पा गया है जो कि ब्राह्मण ब्राह्मण हो कर न पा सकता हो। किसी क्षत्रिय ने कोई ऐसी चीज नहीं पा ली जो कि शूद्र शूद्र रह कर न पा सकता हो। न पा सकता हो तब सवाल उठता है। लेकिन जहां आत्मिक अनुभव का संबंध है, जहां तक परमात्मा के द्वार की खोज की बात है वहां तक कहीं से भी उसे पाया जा सकता है। अपने ही कर्म में और अपने ही गुण के अनुसार बरतते हुए सरलता से पाया जा सकता है, अन्यथा चीजें अकारण ही जटिल हो जाती हैं।

प्रश्न :--आज के युग में शूद्र के घर में उत्पन्न हुआ बेटा क्या करना चाहेगा?

उत्तर :--आज व्यवस्था विकृत हुई है। चीजें अस्त-व्यस्त हो गयी हैं। आज शूद्र के घर में उत्पन्न हुआ बेटा, पहली तो बात, मुझसे पूछने नहीं आयेगा कि मैं क्या करूं। हमारे उत्तरों पर निर्भर नहीं रहेगा। शूद्र का बेटा, शूद्र का बेटा है, यह मानने को ही राजी नहीं है, पहली बात। वह इंकार कर चुका है। उसने ब्राह्मण होने की कोशिश शुरू कर दी है। ब्राह्मण ने वैश्य होने की कोशिश शुरू कर दी है। वैश्य ने कुछ और होने की कोशिश शुरू कर दी है। सब किसी और कोशिश में लगे हैं। वह सब कोशिश में लगे हैं कुछ और होने की। पूरा समाज, जो जहां खड़ा है वहां खड़े होने को राजी नहीं है। कहीं और जाने के लिए आतुर है। एक विक्षिप्तता है समाज में आज। आज तो कोई भी जहां है वहां रहने को राजी नहीं है। दौड़ ही रहा है। उस दौड़ के दुष्परिणाम दिखायी पड़ रहे हैं। मैं उन ब्राह्मणों के पक्ष में नहीं हूं जो इसलिए भयभीत हैं कि अगर शूद्र ब्राह्मण हो जाय, अगर शूद्र भी ज्ञानवान हो जाय तो उनकी कोई बपौती छिन जायेगी। मैं उनके पक्ष में नहीं हूं जिन ब्राह्मणों को ऐसा डर है कि उनकी बपौती छिन जायगी। उनके पास कोई बपौती ही नहीं है। जिन ब्राह्मणों को यह डर है कि कोई और जान लेगा तो उनका कुछ जायगा, तो यह समझ लें कि उन्होंने कुछ जाना ही नहीं है। ब्रह्म किसी की बपौती

नहीं है। ज्ञान और सत्य किसी की बपौती नहीं हैं : ब्राह्मण को भयभीत होने की जरूरत नहीं है, भयभीत इसीलिए है कि वह ब्राह्मण नही है। शूद्र को भी भयभीत होकर कुछ और होने की जरूरत नहीं है। जरूरत इसीलिए पड़ गयी कि वह भी समझ नहीं पा रहा है कि शूद्र होने का क्या अर्थ है ? शूद्र शब्द ही निन्दा का हो गया। ब्राह्मण शब्द ही पूजा का हो गया। जब ऐसी विकृति हो गयी है तो शूद्र रोके नहीं जा सकते, वह तो दौड़ेंगे और ब्राह्मणों की पंक्ति में सम्मिलित होंगे। दौड़ेंगे, वैश्य बनेंगे। दौड़ेंगे, क्षत्रिय बनेंगे। और यह सारी की सारी दौड़ पूरे समाज को एक मिश्रित ढंग दे देगी। जैसा कि सारी दुनिया में है। सिर्फ भारत में एक अमिश्रित व्यवस्था है जहां चीजें बँटी हैं, 'पेरेलल' समानान्तर हैं; और हमने एक गहरा प्रयोग किया था।

मैं तो अपनी तरफ से यही सुझाव दूंगा कि शूद्र, शूद्र होने के गुण और कर्म के अर्थ को समझें। वह बहुत मीनिंगफुल है। और अगर उसे ऐसा लगे कि नहीं, उसकी जीवन की नियति वह नहीं है, लेकिन ध्यान रहे उसे ऐसा लगे भीतर से कि उसकी नियति यह नहीं है, तो उसे जो लगे नियति वह उस तरफ जाय। लेकिन दूसरे की स्पर्धा में न जाय। वह इसलिए ब्राह्मण न होना चाहे कि ब्राह्मण बहुत मजे लूट रहे हैं इसलिए मैं ब्राह्मण हो जाऊं। तब वह अपने गुण कर्म का विचार नहीं कर रहा है। कोई ब्राह्मण इसलिए शूद्र न हो जाय कि शूद्र आज बड़ी प्रिफरेंस पा रहे हैं, उनकी प्रिविलेज क्लास है इस वक्त शूद्रों की। इस वक्त शूद्र, जैसे कभी ब्राह्मण प्रिविलेज्ड थे, वैसे आज शूद्र हैं। आज मुझे पता है भलीभांति कि न मालूम कितनी युनिवर्सिटीज में, न मालूम कितने कालेजों और स्कूलों में, न मालूम कितने लड़कों ने अपने को शूद्र गिनाया है जो कि शूद्र नहीं हैं। क्योंकि शूद्र को स्कालरशिप भी है, शूद्र को नौकरी में भी स्थान नियत है। आज नहीं कल ब्राह्मण भी शूद्र होने को आतुर हो सकता है। शूद्र किसलिए आतुर है ब्राह्मण होने को, क्योंकि ब्राह्मण कल तक प्रिविलेज्ड क्लास थी, महत्वपूर्ण थी, उसका ब्राह्मण होना ही पर्याप्त था। कल शूद्र होना भी महत्वपूर्ण हो सकता है। और जैसी हालत चल रही है उसमें असंभव नहीं है। तब जो शूद्र के घर में पैदा नहीं होगा वह भगवान को कोसेगा कि एकदम गलत बात की आपने। शूद्र के घर में पैदा करते, तो इलेक्शन में भी सुनिश्चित सीट थी। मैं तो कहूंगा जरा जल्दी मत करें। ब्राह्मण शूद्र हो जायेंगे। जगजीवन राम कौन न होना चाहेगा ? आज की जो विकृत स्थिति है इसमें कोई मेरी सलाह से नहीं रुकने वाला है। लेकिन, मेरी अपनी समझ यही है। आज तो दौड़ शुरू हो गयी है, बीमारी चल चुकी है, रोकना करीब-करीब असम्भव है। लेकिन,

जो मुझे ठीक लगता है वही मुझे कहना चाहिए। मुझे तो ठीक यही लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण–कर्म को ठीक से जांच पड़ताल कर ले, फिर आगे बढ़े।

अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिक शलिवान या पर्ल्स या और दूसरे मनोवैज्ञानिक इस सुझाव पर खड़े हैं कि प्रत्येक स्कूल में एक मनोवैज्ञानिक होना चाहिए अनिवार्य रूप से, प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में। क्यों ? क्योंकि वह कहते हैं कि जब तक बच्चे का गुण धर्म न समझा जा सके तब तक तय नहीं करना चाहिए कि उसे क्या शिक्षा दी जाय। बाप तय नहीं करे, क्योंकि बाप को क्या पता कि बच्चे का गुण धर्म क्या है ? ये बच्चा गणितज्ञ बन सकता है कि संगीतज्ञ, यह बाप कैसे तय करेगा ? रुझान से कि बाप को संगीत अच्छा लगता है इसलिए तय कर ले कि मेरा लड़का संगीतज्ञ हो जाय, लेकिन लड़के में गुण धर्म है या नहीं ? या बाप तय कर ले कि लड़का इंजिनियर हो जाय, क्योंकि इंजिनियर की बाजार में कीमत है, मारकेट वैल्यू है। लड़का लेकिन इंजीनियर का गुण धर्म लिये है या नहीं ? पश्चिम का मनोवैज्ञानिक कह रहा है कि आज जगत में जो इतना संताप है उसका कुल कारण यह है कि कोई भी अपनी जगह नहीं है। इसका क्या मतलब हुआ ? वह कहते हैं, कि एक मनोवैज्ञानिक बिठा दो हर प्राइमरी स्कूल में जो चार साल बच्चों का निरीक्षण करके लिखे कि यह बच्चा क्या हो सकता है, इसका रुझान क्या है। इसका एपटीट्यूड क्या है ? यह वही बात हो गयी। अगर मनोवैज्ञानिक तय कर दे कि एपटीट्यूड क्या है और वह कह दे कि बच्चे को शूद्र होना है, इसको मजदूर होना चाहिए, फिर क्या हुआ ? फिर वापस वर्ण लौटा। हमने जन्म से तय किया था, अब जन्म से तय न हुआ। जन्म से तय करना परमात्मा के हाथों में छोड़ना था। प्रायमरी स्कूल में एक मनोवैज्ञानिक के हाथ में छोड़ना है जो कि परमात्मा जैसे कुशल हाथ नहीं हो सकते। मनोवैज्ञानिक खुद आधे पागल हैं। इनके हाथ में तय करवाना कि बच्चा क्या बने, शूद्र, कि ब्राह्मण, कि क्षत्रिय, कि वैश्य, क्या बने ? कहां जाय ? इसकी जीवन यात्रा क्या हो ?–यह एक मनोवैज्ञानिक तय करे।

हमने जो सोचा था वह ज्यादा गहरा था। हमने सोचा था कि जीवन की व्यवस्था आत्मा का अपना झुकाव है। और परमात्मा के नियमों के अनुसार जन्म के साथ ही क्यों न तय हो जाय। आत्मा क्यों न अपने ही चुनाव से उस घर में पैदा हो जाय जहां उसका एपटीट्यूड हो, जहां उसका झुकाव हो। यह बहुत आश्चर्य की बात है। हिंदुस्तान में शूद्रों को हुए कोई दस हजार वर्ष हो गये। दस हजार वर्षों में शूद्रों ने कोई बगावत नहीं की, कोई विद्रोह नही किया। अगर शूद्र अपने भाग्य से बहुत नाखुश थे तो बगावत हो जानी चाहिए थी, लेकिन वे नाखुश नहीं थे। उनका एपटी-

टचूड मेल खा रहा था । वे असंतुष्ट नहीं थे । इधर दो सौ वर्षों में अंग्रेजी व्यवस्था के बाद नाखुश होने शुरू हुए । पहली बार एक ऐसी समाज व्यवस्था सत्ता में आयी इस मुल्क में, जिसको वर्ण की आंतरिक धारणा का कोई भी पता नहीं था । उसने चीजों को तोड़ना शुरू किया । उसने वर्णों और वर्गो को लड़ाना शुरू किया । उसने हिंदू को मुसलमान से लड़ाया, इतना ही नहीं, उसने शूद्र को ब्राह्मण से लड़ाया। उसने सारा अस्त-व्यस्त कर दिया । उसने भारत की बहुत गहरी जड़ें, जो हजारों सालों में हमने आरोपित की थीं, सब हिला डालीं । आज तो सब अव्यवस्थित हो चुका है । फिर भी मैं यही कहूंगा कि व्यक्ति अपने गुण धर्म को ही सोचे । जन्म की बहुत फिक्र न भी करे तो भी बहुत आन्तरिक सोच समझ, इंट्रास्पेक्शन से सोचे कि मैं क्या हो सकता हूं ? अगर उसे लगता हो कि वह ब्राह्मण हो सकता है, तो ब्राह्मण की यात्रा पर निकल जाय । अगर उसे लगे कि वह शूद्र हो सकता है, तो शूद्र की यात्रा पर निकल जाय । नहीं तो मनोवैज्ञानिक से पूछे । मगर राजनीतिज्ञ से न पूछे । अनी वह पाजनीतिज्ञ से पूछ रहा है । अंधे, अंधों को मार्गदर्शन दें तो जो हो सकता है वही हो रहा है ।

आचार्यश्री रजनीश

के क्रांतिकारी विचारों का पाक्षिक संकलन

योग-दीप

(मराठी भाषा में)

संपादक :

गोपीनाथ तलवलकर

मां आनंद वंदना (वंदना पुँगलिया)

वार्षिक शुल्क : ५ रुपये

प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र, १०१ टिंबर मार्केट, पूना--२

फोन : २४१४८

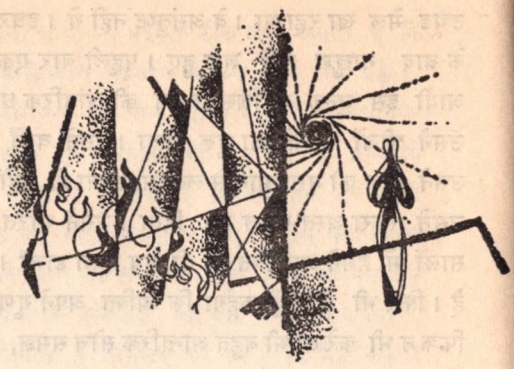

सत्य, साहित्य के सागर में

शंख गूंज उठा

□ ब्रह्मदत्त

पूरी पृथ्वी एक घने कोहरे से आवृत्त थी। सूर्य और चन्द्र के लम्बे, सशक्त बाहु भी पृथ्वी को सीधे स्पर्श कर सकने में असमर्थ हुए जा रहे थे। बिना नव-ऊर्जा के वायु ने प्राणों में थिरकना छोड़ दिया था। संभावनायें समाप्त हो रही थीं और संवेदनाएं लुप्त। जीवन के सारे गीत, सारे नृत्य खो गये थे। जीवन किसी घायल, पीड़ित पशु की तरह मुंह बाये एक एक सांस के लिए तड़पता हुआ दम तोड़ रहा था। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम तो रही थी किंतु लगता था कि पृथ्वी की गर्दन पर जैसे किसी विकराल दैत्य ने अपना खूंखार और भारी पंजा रख दिया हो। लुढ़कती, डगमगाती, अंधकार में लड़खड़ाती, पृथ्वी अपनी यात्रा पर सशंकित हृदय से सिसकती चली जा रही थी।

यह दिसम्बर १९३१ के पहले सप्ताह की स्थिति थी। पृथ्वी पर जीवन लगभग शून्य हो गया था पर उधर अंतरिक्ष के शून्य में गतिविधियां प्रखर हो गयी थीं। अपनी जीवन दायिनी रश्मियों को पृथ्वी तक पहुंचाने के लिए भगवान मार्तण्ड अत्यंत प्रचंड हो गये थे। भगवान शशमौलि अत्यंत उत्सुकता से उनके भीतर हो रहे निरंतर उग्रतर विस्फोटों को ध्यान पूर्वक निहार रहे थे। छहों विभूतियां–ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, वैराग्य, और मोक्ष, हाथ जोड़े अत्यंत आतु-

रता और व्यग्रता से किसी महान् घटना के घटित होने की प्रतीक्षा में चुपचाप खड़ी थीं। ब्रह्माण्ड के समस्त ग्रह-उपग्रह किसी अनजानी, अपरिचित आशंका से एक दूसरे के निकट आने का असंभव प्रयास करने में जुट पड़े थे।

११ दिसम्बर १९३१ को सुबह ११ बजे के लगभग भगवान किरणमाली एक अत्यंत शक्तिशाली विस्फोट करने में सफल हो गये। उस विस्फोट से एक महातेजस्वी रविजात प्रगट हुई। सूर्य के भीतर धधकती अग्नि में पहले एक कमल दृष्टिगोचर हुआ और फिर एक नन्हें शिशु का सांवला आकार उभरा। वह महा-तेजस्वी रविजात उस बालक के इर्द-गिर्द एक वर्तुल बनाकर सर्प-कुंडलिनी की भांति अत्यंत द्रुत-गति से छूटी और पृथ्वी की ओर चल पड़ी। मार्ग में चन्द्रमा अमृत-कलश लिए हुये प्रगट हुआ। छहों विभूतियां भी हाथ बांधे एक के पीछे एक आ खड़ी हुयीं। रविजात ने सबों को अपने तेजस्वी कर से स्पर्श किया और अमृत को स्वीकार कर पृथ्वी की ओर और भी तीव्र गति से चली।

कोहरे के घने आवरण को भेदकर वह सूर्य-रश्मि पृथ्वी के गर्भ में प्रविष्ट हो गयी।

चंद्रमा खिलखिलाकर हंसा।

दैत्य ने अपना पंजा खींच लिया। पृथ्वी एक बार हौले से कांपी और फिर एक नई शक्ति, एक नये उत्साह और एक नई उमंग से भरकर अपनी शाश्वत यात्रा पर नृत्य करती चल पड़ी।

० ० ०

मंद मंद मुस्कराते हुए भगवान अमृतांशु पर्वतीय मार्ग पर मन्थर गति से चले जा रहे थे। जिस जगह से वे गुजरते, वृक्ष फलों से लद जाते, शाखाएं फूलों से भर उठतीं। उनके ऊपर निरभ्र आकाश में पंछी उन्मुक्त विचरण करते हुए विविध स्वरों में गीत गाने लगे। पूरे वातावरण में वसंत की मादकता घुल उठी। भगवान अमृतांशु किंतु इन सब से अस्पर्शित, निर्लिप्त से उसी तरह मुस्क-राते हुए, पर्वत की तलहटी में बसे नगर की ओर शनैः शनैः बढ़ते गये।

नगर में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि पूरा नगर एक अजीब-सी खामोशी में डूबा हुआ है। सड़कों, दुकानों, मकानों, यहां तक कि नगर के चौकों, बगीचों और मनोरंजन के स्थानों में भी एक विचित्र चुप्पी छायी हुयी थी। समस्त नगर-वासी बिना एक दूसरे की तरफ देखे, चुपचाप अपने-अपने कामों में लगे हुए थे। खामोशी कुछ इस कदर गहन थी कि लगता था कि नगर पर जैसे किसी ने

कोई गाढ़ी स्याही पोत दी है। दिन के उजाले में भी रात्रि का आभास हो रहा था। पूरा नगर जैसे प्राणहीन, चेतना-विहीन हो गया था।

नगर के मुख्य चौक के पास आकर वे रुके। उन्होंने सिर उठाकर चारों ओर देखा। सैकड़ों लोग आ जा रहे थे। वाहनों का आवागमन भी हो रहा था। किन्तु कोई भी उनकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था। वे वहां से हटने का विचार कर ही रहे थे तभी मनुष्यों का एक दल, वस्त्रों और हाथों से मुंह छिपाये हुए, दौड़ता हुआ वहां से गुजरा। दोनों हाथ उठाकर उन्होंने उस दल को रोक लिया।

'क्या बात है? तुम लोग इस तरह बदहवास से कहां दौड़े जा रहे हो? और क्यों इस तरह से अपने चेहरों को छिपाये हुए हो?' उन्होंने दृढ़ और सशक्त स्वर से पूछा।

'आपका दिमाग अपनी जगह पर नहीं है क्या?' . .

'शहर में नये नये आये हो?'

'ऐसे सवालों के पीछे आपके इरादे क्या हैं?'

'हट जाओ रास्ते से वरना पछताओगे!'

'कोई पागल मालूम होता है। रास्ता काटकर दौड़ चलो।'

एक साथ सभी बोल पड़े किन्तु भगवान अमृतांशु उसी तरह हाथ उठाये खड़े रहे और दल में किसी व्यक्ति का इतना साहस न हुआ कि उन्हें हटाकर आगे बढ़ जाये।

'पर बात क्या है?' उनके होठों पर मोहिनी प्रगटी, 'आखिर तुम लोग हो कौन?' उन्होंने सीधा प्रश्न किया।

'हम भयभीत लोग हैं। आप इतना भी नहीं जानते?—जाने दें! जाने दें हमें।' दल का अगुवा एकाएक चिल्ला पड़ा और सिर झुकाकर भगवान अमृतांशु के फैले हाथों के नीचे से निकल कर भागा। उसके पीछे पूरा का पूरा दल, बांध के छिद्र से निकलते जल की तरह किलकिलाकर दौड़ निकला।

भगवान अमृतांशु की नयन-झीलों से करुणा का सागर उमड़ पड़ा। दोनों हाथ नीचे गिराकर वे मुड़े। दाहिनी तरफ से एक बड़ा जुलूस चला आ रहा था। वे धीरे से आगे बढ़े और जुलूस के साथ हो लिये। चलते-चलते उन्होंने हाथ में एक तख़्ती उठाये तरुण से पूछा—'कहां जा रहे हो?—यह पूरी भीड़ कहां जा रही है?' उस तरुण ने घूरकर उनकी ओर देखा। उनके चेहरे पर असीम

उत्सुकता और निस्सीम प्रेम देखकर वह बोला, 'हम कहीं जा नहीं रहे हैं, सिर्फ सरकार के विरोध में चल रहे है।'

'विरोध में ? पर क्यों ?'

'सरकार में हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं। जिनकी सरकार है, वे सब न्यस्त स्वार्थी हैं। हम डरे हुए हैं कि कहीं हम नेस्तानाबूद न हो जायें।'

उन्होंने रुककर उस जुलूस को देखा। जुलूस बिना उनकी ओर देखे, उनके निकट से गुजर गया। वे धीरे-धीरे चलकर, सड़क पार कर, बायें फुटपाथ पर आ गये। बायीं ओर मकानों का सिलसिला चला गया था। एक मकान के निकट आकर वे रुक गये। मकान के तलमंजिले में एक बड़ा हॉल था। हॉल की खिड़कियों से उन्होंने देखा, भीतर तमाम औरतें भरी हुयी थीं। हॉल के अंदर एक ऊंचा मंच था और मंच पर भी अनेक स्त्रियां बैठी हुयी थीं। एक स्त्री खड़ी होकर कुछ बोल रही थीं। बाहर से वे सुन न सके कि वह क्या बोले जा रही है ?

सागर की अगाध शांति चेहरे पर लिये वे हॉल के भीतर प्रवेश कर गये।

'मैं नहीं जानती कि मेरे पति को मुझसे क्या शिकायत है। मैं कोई भी गल्ती नहीं करती। मै निरंतर इस बात का ध्यान रखती हूं कि उन्हें किसी बात का कष्ट न होने पाये। मै जी-जान से उन्हें प्यार करती हूं किंतु न जाने क्यों वे मुझे प्यार नहीं करते। मैं बहुत डरी हुयी हूं कि कहीं वे किसी और को तो प्यार नहीं करते ———।' वह औरत चेहरे पर दुख और आंखों में आंसू भरे कह रही थी।

भगवान अमृतांशु हॉल के पिछले कोने में चुपचाप खड़े सुनते रहे। एक के बाद एक, अनेक स्त्रियां मंच पर आयीं और इसी तरह अपने पतियों के प्रेम पर संदेह प्रगट कर चली गयीं। उन्होंने हॉल में बैठीं उन तमाम औरतों पर एक दृष्टि फेंकी। सभी औरतों के चेहरे पर शंका और भय के बादल मंडरा रहे थे। वे अपार दया से भर के हॉल के बाहर निकले।

सड़क पर आते ही वे कई दौड़ते-भागते लोगों से टकरा गये।

'क्या हो गया ? क्या हो गया ? इस तरह घबड़ाकर कहां भाग रहे हो ?' उन्होंने फुटपाथ पर गिर गये एक साधु जैसे दिखायी देते व्यक्ति को उठाते हुए पूछा।

'जाने दो ! जाने दो मुझे।' उस साधु ने भगवान अमृतांशु का हाथ झिटककर भागने का प्रयत्न किया किन्तु उन्होंने उसे कंधे से पकड़ लिया।

'कहा जाना चाहते हो? भाग क्यों रहे हो?' उन्होंने पुनः पूछा। उनके चेहरे पर निश्चितता के ऐसे चिन्ह उभर आये कि वह साधु ठहर गया।

'मैं कहीं भाग नहीं रहा हूं। मैं भगवान को ढूंढ़ रहा हूं।'

'भगवान को?' वे मुस्करा पड़े। साधु को लगा कि गगन में कोटि कोटि तारे झिलमिला उठे।

'हां।' उसने कहा।

'तो दौड़ो मत! रुको और देखो!' वे खिलखिलाकर हंस पड़े। साधु को लगा कि अरबों-खरबों घंटे-घड़ियाल एक साथ बजे। वह हतप्रभ हो गया।

'क्या कहते हैं? रुको और देखो?— कहां, कहां है वह?' उसने चारों ओर घूम-घूमकर देखा। उसके चेहरे पर भय की अगणित रेखाएँ खिंच गयीं, 'बताओ, कहां है वह?' वह चिल्ला पड़ा। उसके दोनों हाथों की मुट्ठियां भिंच गयीं।

'भगवान के नाम से तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, लेकिन तुम तो भयभीत जान पड़ते हो?' भगवान अमृतांशु उसकी ओर अपलक निहारते हुए बोले।

'हां-हां, मैं भयभीत हूं।' साधु चीखकर बोला, 'हमें बचपन से सिखाया गया है कि भगवान से डरो। डरते-डरते हम तंग आ गये हैं। अब हम उस डर को हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहते हैं। बताओ, बताओ, कहां है भगवान? हम उसे अभी खत्म कर देते हैं।' उसने लपककर भगवान अमृतांशु के बाहु पकड़ लिये।

बाहु पकड़ते ही उसका पूरा शरीर झनझना उठा। लगा उसे कि सहस्रों वोल्ट शक्ति वाला बिजली का तार उसने पकड़ लिया। एक महाभयानक चीत्कार के साथ वह भूमि पर पछाड़ खाकर गिरा।

भगवान अमृतांशु के चेहरे से करुणा, पत्तों से टपकती शबनम की बूंदों की तरह झर उठी। वे चुपचाप वहां से चल पड़े। थोड़ी देर बाद वे नगर के एक ऐसे मुहल्ले में जा पहुंचे जो व्यापारी-क्षेत्र सा दिखायी पड़ता था। तरह-तरह की दुकानें थीं और तरह-तरह के सौदे हो रहे थे। एक बहुत बड़े मकान के अंदर और बाहर सभ्रांत, सम्पन्न लोग खड़े न जाने कैसे-कैसे इशारे और नारे लगा रहे थे। सबके चेहरों पर एक विचित्र प्रकार की उत्तेजना, उत्कंठा और भय छाया हुआ था। सबसे अद्भुत बात यह थी कि हर एक आदमी दूसरे आदमी की जेब में हाथ डाले हुए था।

'यह सब क्या है? क्या हो रहा है यहां?' भगवान अमृतांशु ने एक टोपी-धारी सज्जन से पूछा।

'कहां क्या है?' वह आदमी भयभीत हो उनकी ओर मुड़ा। एक अहानि-कर व्यक्तित्व को अपने सामने खड़ा देख वह कुछ आश्वस्त हुआ, 'ये?' उसने पूछा और साथ ही उत्तर भी दे डाला, 'अरे इतना भी नहीं जानते? हम सब व्यापारी हैं, व्यापार कर रहे हैं।' उसने कुछ शान से कहा।

भगवान अमृतांशु मुस्कराये और चल पड़े। थोड़ा आगे जाने पर उन्हें मनुष्यों का एक दल मिला, जो पसीने की नदियां बहा रहा था।

'तुम लोग यह क्या कर रहे हो?' उन्होंने पूछा।

'देखते नहीं? हम लोग पसीना छोड़ रहे हैं।' एक प्रौढ़ ने कड़ककर कहा।

'पर क्यों? तुम लोग कोई कार्य तो नहीं कर रहे हो। नाहक ही पसीना क्यों निकाल रहे हो?' उन्होंने कुछ हैरान हो पूछा।

'काम करने की क्या जरूरत है? हम तो डरे हुए लोग हैं। हम डर के पसीना छोड़ रहे हैं।' उस प्रौढ़ ने सशंकित हो कहा।

'पर डर किस बात का?' भगवान अमृतांशु और अधिक हैरान हो बोले।

'डर किस बात का?' वह प्रौढ़ चिल्लाया, 'पागल हो क्या? अरे डर के लिए भी कोई कारण चाहिए? हम डरे हुए हैं बस, और क्या!' पसीना छोड़ता वह दल शीघ्रता से वहां से हट गया।

भगवान अमृतांशु के चेहरे पर चिंता प्रगट हो गयी। दोनों हाथों को पीठ पर बांध वे धीरे-धीरे नगर की सीमा की तरफ चल पड़े। सीमा के पास आकर उन्होंने देखा—हर एक आदमी दूसरे आदमी के पीछे छूरा लिये घूम रहा था। उन्होंने पलटकर एक बार पीछे छूट गये भीतों के नगर पर दृष्टिपात किया और अत्यंत धीमी गति से बायां हाथ उठाया।

नगर के भीतर से एक बहुत बड़ा कोलाहल उठा।

अचानक नगर का स्याह रंग फुरफुराकर उड़ गया।

सीमा पर घुम रहे छूरेधारियों के छूरे हाथ से छूट गये।

लोगों ने चकित होकर देखा। एक महातेजस्वी परमपुरुष अभय मुद्रा में बायां हाथ उठाये खड़ा नगर की ओर देख रहा है।

लोगों के मुंह से सिसकारी निकल गयी।

भगवान अमृतांशु मंद-मंद मुस्कराते हुए नगर के बाहर निकल गये।

उनकी अत्यंत कमनीय काया के इर्द--गिर्द एक अद्‌भुत प्रकाश-वलय निर्मित हो गया था ।

० ० ० ०

वे चुपचाप सिमेंट और कंकरीट से बने उस जंगल में प्रविष्ट हो गये । उनके चेहरे पर अपार उत्सुकता थी। एक एक वस्तु को अत्यंत उत्साह और प्रशंसा की दृष्टि से देखते हुए वे आगे बढ़ने लगे ।

मनुष्य की बुद्धि का अत्युत्तम उपयोग प्रत्येक ओर दृष्टिगोचर हो रहा था। मार्ग के दोनों ओर गगनचुंबी अट्टालिकाएं खड़ी थीं। मार्ग की शोभा के लिए जगह जगह पर रंग-बिरंगे प्लास्टिक के सुन्दर वृक्ष लगे थे। बहुतों में नाइलोन के खूबसूरत फूल टंके हुए थे। सड़क पर स्वचालित वाहन दौड़ रहे थे। स्वचालित यंत्रों द्वारा स्थान - स्थान पर तात्कालिक आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति हो रही थी। थोड़ा आगे जाने पर उन्हें एक कलकल बहती नदी मिली । वे बहुत ही प्रसन्न हुए क्योंकि नदी में पवित्र कोकाकोला बह रहा था। नदी के किनारे बड़े शानदार कांच के घाट बने हुए थे । कई एक पूजास्थल भी थे । जिनके भवन सुगंधित साबुनों और टुथपेस्टों से निर्मित किये गये थे। कास्मेटिक्स की खुशबू फिजां में छायी हुयी थी। कोकाकोला नदी में वेफर्स और पॉपकार्न की बनी नावें चल रही थीं। नदी के उस पार जाने के लिए सोफ्टी और लाली-पॉप के पुल बने हुए थे। ऐसे ही एक सेतु के ऊपर से भगवान अमृतांशु बिना सेतु पर चरण धरे नदी के उस पार चले गये ।

अभी तक उन्हें वहां के निवासी बहुत कम दिखायी पड़े थे। जो दिखायी भी पड़े थे, वे उन्हें देखकर न जाने क्यों अपना मुंह छिपा गये थे। पर अब, नदी के इस पार, उन्हें वहाँ के प्राणी बहुतायत से मिलने लगे। धातुओं के पार्कों में, रबड़ की सड़कों पर, मोम के मनोरंजन स्थलों पर। जगह-जगह लोग दिखायी पड़ रहे थे। सिंथेटिक वस्त्रों में सजे-धजे । पहले तो उन्होंने ध्यान नहीं दिया, लेकिन जैसे जैसे वे और-और भीतर चलते चले गये, वे आश्चर्य से भर उठे। वहां के निवासी थे तो मनुष्य ही पर डीलडौल उनका बड़ा ही अद्‌भुत था। सभी के हाथ-पैर दुबले - पतले, सूखे हुए से थे, किंतु सबों के सिर बहुत बड़े-बड़े थे। लगता था कि जैसे बांस के बामुओं पर बड़े-बड़े घड़े औंधा के रख दिये गये हों । सबों के चेहरे पर अभिमान की झलक लक्षित हो रही थी, किंतु साथ ही सब न जाने क्यों घबड़ाये से भी लग रहे थे। अधिकतर लोग भगवान

अमृतांशु की ओर देखते ही नहीं थे। जो कोई देखता भी था तो उपेक्षा की दृष्टि डाल, मुंह फिरा लेता था।

चलते-चलते भगवान अमृतांशु एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जो दूर से कोई बाड़ा-सा दिखायी देता था। चौकोर घेरे में चारों ओर से बिजली के तार लगाये गये थे। बाड़े के भीतर अनगिनत रेडियो-सेट, टेलिविजन, कारें, फ्रिज और पचासों सुख-सुविधा के सामान करीने से रक्खे हुए थे। एक बहुत बड़े सिर वाला आदमी सामानों के एक ढेर पर चिपका पड़ा था। वह रह रह के चिल्ला पड़ता। कभी कभी सिसकने भी लगता। भगवान अमृतांशु ने उसको किसी पीड़ा में जान, बाड़े के बाहर से चिल्लाकर पूछा, 'तुमको कोई कष्ट जान पड़ता है, कहो, क्या बात है? शायद मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं।'

वह आदमी उछलकर खड़ा हो गया। उसके हाथ में न जाने कहां से एक स्वचालित बंदूक आ गयी। उसे उनकी ओर तानकर वह चिल्लाया, 'दूर, दूर, दूर-हट! जरा भी नजदीक आने की कोशिश की तो भून के रख दूंगा।'

भगवान अमृतांशु आश्चर्यचकित हो गये, बोले, 'बात क्या है? तुम इतने उत्तेजित क्यों हो गये? मैंने तो कुछ भी अहित नहीं किया तुम्हारा।'

'जाओ, जाओ तुम क्या अहित करोगे!—बातें बना रहे हो मुझसे? तुम्हारी टोली के एक एक को अच्छी तरह पहचानता हूं।' वह आदमी और अधिक उत्तेजित जान पड़ा।

'टोली? मैं किसी टोली को नहीं जानता। मैं तो नितांत अकेला हूं।—पर यह तो बताओ, तुम किन लोगों से, किस टोली से इतना भयभीत हो रहे हो?' भगवान अमृतांशु के चेहरे पर अनाक्रमक मुस्कराहट फूटी। वह आदमी कुछ आश्वस्त जान पड़ा, बोला, 'जब तुम उस टोली से संबंधित नहीं हो तो क्या करोगे जानकर? जाओ, अपना काम करो। पर याद रखना, मेरी इन चीजों को कोई हाथ नहीं लगा सकता!'

बन्दूक हवा में तानकर वह शान से बोला। भगवान अमृतांशु ने उसकी ओर गौर से देखा और फिर कंधे उचकाकर चल पड़े। थोड़ा आगे जाने पर उन्होंने देखा कि सड़क पर भगदड़ मच गयी है। वे रुक गये। चारों ओर सिर उठाकर देखा। सामने की एक गली से रंग-बिरंगे सूती वस्त्र पहने, दाढ़ी, मूंछें, और बेतरतीब बाल रक्खे, छोटे सिर वाले चार-पांच नवयुवक चले आ रहे थे। लोग उन्हें ही देखकर दूर भाग रहे थे। कुछ एक बड़े सिरवाले उन तरुणों को

हिकारत से देखते, हाथों में कुछ विचित्र अस्त्र लिए उनके साथ-साथ चल रहे थे। अपने निकट से जा रहे एक व्यक्ति को भगवान अमृतांशु ने रोककर पूछा, 'क्या बात है ? इन निर्दोष बालकों को देखकर सब लोग डर क्यों रहे हैं ?'

उस आदमी ने रुककर भगवान अमृतांशु को सिर से पैर तक बड़े गौर से देखा और फिर बोला, 'किस जंगल से आ रहे हो? यहां के तो नहीं जान पड़ते?'

भगवान अमृतांशु मुस्कराये, 'वहां से आ रहा हूं।' उन्होंने एक उंगली उठाकर सूर्य की ओर संकेत किया।

'वहां से ?' उस आदमी ने मुस्कराकर कहा, 'अभी थोड़ा समय है। हम वहीं पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं। खैर, तुम इन लड़कों के बारे में पूछ रहे थे न? ये गलत पैदा हो गये लोग हैं। वैसे तो हम लोग परीक्षण-नलिकाओं में ही बच्चे पैदा करते हैं किंतु पिछले कुछ वर्षों से पता नहीं टेस्ट-ट्यूबों में कोई खराबी आ गयी है या बीजों में, इस तरह के छोटे सिर वाले बच्चे पैदा हो जाते हैं। हालांकि अभी इनकी संख्या कोई बढ़ी नहीं, पर जो भी है, बड़ी चिंताजनक है।' बोलते-बोलते वह आदमी कुछ चिंतित हो गया। उसका बड़ा सिर शोक की मुद्रा में हिलने लगा।

'किंतु इसमें चिंता की क्या बात ? वे कुछ नुकसान तो नहीं करते।'

'नुकसान नहीं करते ? अरे, अभी तुमने देखा क्या है ? ये जो अभी अभी वहां से गये हैं शायद सबसे कम हानिकारक हैं, मगर इनके दूसरे बन्धुओं को देखोगे तो सिर पर पैर रख के भागोगे। वे लोग जो भी देखते हैं, फोड़ने तोड़ने लगते हैं। हमारी इन बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धियों का मजाक उड़ाते हैं और मौका मिलते ही नाश पर उतारू हो जाते हैं। पकाकर खाना खाते हैं और स्त्रियों को प्यार करते हैं।' वह आदमी एकदम बौखलाकर बोला।

भगवान अमृतांशु की आंखें फैल गयीं, पूछा, 'क्यों ? क्या तुम लोग स्त्रियों को प्रेम नहीं करते ?'

'चः !' वह आदमी चिढ़कर बोला, 'हम भला ऐसा क्षुद्र काम करेंगे ? अरे, ऐसे निम्नकोटि के कार्य के लिए हमने मशीनें रख छोड़ी हैं ! हम लोग प्रेम-फ्रेम नहीं करते। समझे ?'

'हां-हां, समझ गया।' भगवान श्री तेजी से बोले, 'तभी तो इतने बड़े-बड़े सिर हैं।'

'हां। शाबाश !' वह आदमी खुश हो गया, 'जान पड़ता है सूर्य में भी बुद्धिमान लोग हैं।' उसने सिर उठाकर ऊपर देखा। सूर्य की प्रचंड किरणें उसकी

आंखों में भालों की तरह जा धंसीं। तड़पकर उसने आंखें बंद कर लीं। भगवान अमृतांशु मुस्कराकर चल पड़े।

वे धीरे-धीरे सिमेंट और कंकरीट के जंगल को पार करते हुए उसके अंतिम सिरे पर पहुंचे। यहां पहले से भी ज्यादा बड़े सिर वाले लोगों का निवास था। एक बड़ा सिर वाला चन्द्रमा पर पैर रखे हुए सो रहा था। कुछ बड़े सिरवाले एक मुर्दाशरीर में स्वनिर्मित प्राण डालने के प्रयत्न में जुटे हुए थे। बहुत से बड़े सिरवाले नये-नये विस्फोटकों, बड़े-बड़े बमों के रख-रखाव और नवीनतम आयुधों के आविष्कार में संलग्न थे। थोड़ी दूर पर राकेटों का बियाबान जंगल सांय-सांय कर रहा था। यहां जीवन एकदम निस्पंद, एकदम निष्प्राण प्रतीत हो रहा था। आसमान में एक भी परिंदा नहीं उड़ रहा रहा। वायु में तीव्र रसायनों की गंध घुली हुयी थी। वातावरण गणित के फार्मूले, केमेस्ट्री-फिजिक्स के उच्चारण न किये जा सकने वाले बेहिसाब शब्द, इतिहास की मुर्दा तारीखों की बू और भूगोल की ऊबड़खाबड़ धरती की सड़ांध व्याप्त थी। भगवान अमृतांशु ने अत्यंत द्रवित होकर सिर उठाया। प्रकृति का संगीत मौन था, जीवन का संगीत दफन हो गया था, संसार का नृत्य मृत्यु-शय्या पर दम तोड़ रहा था।

अचानक राकेटों के जंगल के भीतर से एक अति वेदना-युक्त कातर चीख आती सुनायी दी। भगवान अमृतांशु तेजी से उस ओर गये। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ी खोपड़ीवाला, बिजली के एक छोटे से बटन को दोनों हाथों से घेर कर बैठा करुण विलाप कर रहा है। वे चुपचाप उसके पीछे जा कर खड़े हो गये। निकट ही था कि वे उसके कंधे पर सांत्वना भरा हाथ रखते कि वह बड़ी खोपड़ी पानी में पड़ी औंधी नाव की तरह जोरों से डुली। उनका हाथ उठा का उठा रह गया। वह आदमी बड़े जोरों से चिल्लाया—'बटन दबा दूंगा।' उसके चेहरे पर बड़े खूंखार भाव प्रकट हो गये। भगवान अमृतांशु झिझक उठे। उस आदमी ने दाहिने हाथ का अंगूठा उस बटन पर रख दिया।

'सुनो, ठहरो।' भगवान बोले, 'बात क्या है? तुम रो क्यों रहे थे? यह बटन कैसा है? इसके दबाने की धमकी क्यों दे रहे हो? क्या राज है इसमें?' उन्होंने अत्यंत मोहिनी मुस्कराहट के साथ पूछा।

उस आदमी ने उस मुस्कराहट को देखा और उसकी उस विशाल खोपड़ी में जलतरंग बज उठा।

'तुम दुश्मनों के एजेंट तो नहीं मालूम पड़ते।' उसने गौर से उनकी

ओर देखते हुए कहा, 'पर फिर यहां क्यों आये?' वह पुन: विक्षिप्त होता जान पड़ा।

भगवान अमृतांशु फिर मुस्कराये, 'उत्तेजित न होओ। शांत हो जाओ। मुझे बताओ तुम क्यों विकल हो रहे हो? क्या दुख तुम पर आ पड़ा है?'

'दुख मुझे?' वह व्यक्ति कुछ सोचता हुआ बोला, 'नहीं, मुझे कोई दुख नहीं है। जानते हो? मैं इस संसार का सर्वशक्तिमान् पुरुष हूं।' उसने अपनी विशाल खोपड़ी को शान से ऊपर उठाकर कहा।

'अच्छा?——वह कैसे?' भगवान अमृतांशु के चेहरे पर मुस्कराहट क्षण भर को भी विलुप्त नहीं हो रही थी।

'इस बटन को देखते हो?'

'हां।'

'इसे अगर मैं दबा दूं तो पूरी पृथ्वी क्षणों म ही रसातल में मिल जायेगी।' वह फिर विक्षिप्त होता जान पड़ा।

'अगर पूरी पृथ्वी नष्ट हो गयी तो तुम कहां होओगे? और फिर नष्ट हो गयी तो तुम्हें लाभ ही क्या होगा? कौन तुम्हें सर्वशक्तिमान् मानेगा?' भगवान हंसकर बोले।

'हां, इसीलिए तो मैं रो रहा था।'

'फिर इसे छोड़ो। नाहक ही समय बर्बाद कर रहे हो।'

'मैं इसे छोड़ूंगा तो दूसरा इस पर अधिकार कर लेगा।—तुम दुश्मनों के एजेंट तो नहीं हो?' वह फिर चौंका।

'नहीं।' वे बोले, 'तो ऐसा करो इन राकेटों को और इस बटन को ही मिटा डालो।'

'ऐसा कैसे हो सकता है?' वह बड़ी खोपड़ी चिल्लायी, 'कितने अथक प्रयासों और प्रयत्नों का यह परिणाम है। नहीं, मैं प्रगति के इन प्रतीकों को नष्ट नहीं कर सकता।'

'नासमझ!' भगवान अमृतांशु बोले, 'बुद्धि की दौड़ को प्रगति कहता है? पगले, सारे अंगों को तूने सुखा डाला है। सिर मात्र ही शेष रह गया है, देख!' अत्यंत करुणापूर्ण शब्दों में उन्होंने कहा और घूमकर पीछे छूट गये बुद्धिमानों के उस सिमेंट ओर कंकरीट के जंगल पर दृष्टिक्षेप किया।

अचानक समीर में सुमनों की सुगन्धि घुल गयी।

जीवन की सरिता इस्पात की पटरियों से उतर कर पृथ्वी की नर्म गोद में दौड़ पड़ी।

बड़ी बड़ी खोपड़ियां सिकुड़ने लगीं।

भगवान अमृतांशु के दाहिने कंधे के पीछे से तृतीय बाहु निकला और उसने हृदय से कमल का एक फूल निकालकर अधर में उछाल दिया।

राकेटों के उस बियाबान वन से वे धीरे-धीरे चल पड़े। जहां जहां उनके चरण पृथ्वी को स्पर्श करते, वहां वहां फूल खिलते चले गये।

० ० ० ०

फैक्टरी की बड़ी चिमनी का धुआं आसमान छू रहा था। छोटी-छोटी अन्य सहस्रों चिमनियों से भी तरह-तरह के रंगवाले धुएं निकल रहे थे। लाल, पीले, हरे, सफेद और काले। मिश्रित होके रंगों ने एक नया रूप धारण कर लिया था। भद्दा, गंदा और व्याकुल करने वाला। चारों ओर धुआं ही छा गया था। कुछ भी स्पष्ट दिखायी नहीं देता था और न ही कुछ स्पष्ट सुनायी देता था। छोटी- बड़ी मशीनों का भयंकर शोरगुल हो रहा था। खट-खट, छुक्-छुर्र, टिन-टिन, तुड़-तड़ाक, भोंऽऽ भों- भों ऽऽ भों। चरमराहट, कड़कड़ाहट, भिनभिनाहट और धुआं। धुआं ही धुआं, मुखर धुआं। तीखा, कड़ुवा, कसैला, आंखों से आंसू निकाल देनेवाला धुआं। समझ में नहीं आता था कि फैक्टरी शहर में है या कि पूरा शहर ही फैक्टरी है।

भगवान अमृतांशु अधमुंदीं आंखों से देखते हुए चुपचाप शहर में दाखिल हो गये। कोई उनकी ओर लक्ष्य नहीं कर रहा था। किसी को फुर्सत न थी। असंख्य लोग थे परंतु सभी व्यस्त थे। वे चुपचाप आगे बढ़ते चले गये। शहर के बीचोबीच आकर वे रुके। यहां एक बहुत बड़ी भट्ठी जल रही थी। उष्णता अपनी चरम सीमा पर थी। बड़ी बड़ी दैत्याकार मशीनों में कुछ ढाला जा रहा था। मोटी मोटी पाइपों का जाल चारों ओर बिछा था। पाइपें भूमि पर और अधर में भी थीं। भूमि के भीतर भी शायद थीं क्योंकि अनेक लिफ्टें ऊपर-नीचे आ जा रही थीं। तरह तरह के ठोस और तरल पदार्थों का ढेर जगह-जगह लगा हुआ था। वायु में चमड़े, चरबी और रुधिर की गंध व्याप्त थी। लगता था कि निकट ही कहीं कसाईबाड़ा है अथवा श्मशान। भगवान अमृतांशु ने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा। उन्हें लगा कि जैसे उन्होंने प्रसव-वेदना से युक्त किसी नारी की आकुल चीख सुनी हो। उन्होंने सिर पर सफेद, अस्पताली टोपी लगाये, हाथ में कोई छोटा-सा यंत्र लिये एक युवक को एक पाइप के ऊपर झुककर कान लगाते देखा। उन्होंने उसके निकट जाकर पूछा, 'यह सब क्या हो रहा है ? कौन-सा शहर

है ? या कि कोई कारखाना है ? तुम कौन हो ? क्या कर रहे हो ? लगता है किसी निर्माण में रत हो तुम लोग ? पर वायु में मृत्यु की गंध जान पड़ती है। . . .क्या हो रहा है यह सब ?'

उस युवक ने सिर उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं, 'इसी ग्रह के आदमी हो या आसमान से कूद पड़े हो ?' उसने पूछा।

'इस समय तो इसी ग्रह का हूं।' भगवान अमृतांशु मुस्कराये, 'मैं अत्यंत उत्सुक हूं, बताओ, यह सब क्या है ?'

उस डाक्टर जैसे दिखाई देते युवक ने सिर उठाया। गौर से उनकी ओर देखा और बोला, 'मेरा अनुमान ठीक ही था। इस ग्रह के अवश्य नहीं हो।'

'ऐसा क्या देखकर कह रहे हो ?' भगवान ने अपनी सम्पूर्ण कलायुक्त मुस्कराहट प्रदान की। युवक को लगा कि वह वायु में ऊपर उठकर तैरने लगा है। उसने अपने सिर को एक दो बार झटक कर कहा, 'देखकर नहीं, सोचकर कह रहा हूं। इस पृथ्वी पर यह बात सबको मालूम है कि हम नये मनुष्य के निर्माण में लगे हुए हैं।'

'नये मनुष्य के ?' भगवान अमृतांशु चौंक-से पड़े, 'नये मनुष्य का निर्माण ? क्या कहते हो ?'

'हां, एकदम ठीक कहता हूं !' वह युवक मुस्कराया।

'क्यों, क्या ये मनुष्य नहीं हैं ? या तुम इनसे भिन्न किसी नये जीवन को उत्पन्न करने के प्रयास में हो ?'

'नहीं, नये जीव नहीं। नये जीव लेकर क्या करेंगे ? जो है वही क्या कम सिर दर्द है ?' वह चिढ़कर बोला।

'हां-हां, वह तो है ही !' भगवान कुछ खिसियाकर बोले, 'मगर कृपा करके बताओ कि कैसा नया मनुष्य ? वह नया मनुष्य पुराने मनुष्य जैसा ही है या उसमें कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं ? उनकी आंखें तो दो ही हैं न ? और सामने की तरफ ही हैं न ? हाथ तो दो ही हैं ? पैरों की संख्या में तो कोई वृद्धि नहीं की न ?——

'अरे-अरे ! तुम तो एकदम बेचैन हो गये ? लगता है जैसे तुम्हारी कोई चीज हम तोड़े-फोड़े डाल रहे हैं ?' वह युवक उनकी व्यग्रता से प्रसन्न हो बोला।

'वह तो है ही !' भगवान अमृतांशु के मुंह से निकला फिर और शीघ्रता से बोले, 'मेरा मतलब है कि हर नये जन्म के पहले कुछ तो तोड़ा, मिटाया जाता ही है। खैर, यह बात छोड़ो, मुझे बताओ कैसा है वह नया मनुष्य ? इस मनुष्य और

उस नये मनुष्य में क्या भेद है?---वह मनुष्य ही तो है न?' उन्होंने सशंक 'हो' उसकी ओर देखा।

वह युवक ठठाकर हंस पड़ा, 'हां, वह मनुष्य ही है। एकदम ठीक मनुष्य। परफेक्ट मनुष्य। अभी हमने उसे फिनिशिंग टच नहीं दिया है किंतु बहुत शीघ्र ही हम उसे पेश कर सकेंगे।' उसने गर्व से सिर उठाकर कहा।

'लेकिन तुमने भेद तो बताया नहीं?... मतलब इस मनुष्य और तुम्हारे मनुष्य में क्या फर्क है?'

'बहुत फर्क है। किंतु सबसे बड़ा फर्क ये है कि हम जो मनुष्य बना रहे हैं उससे कोई भूलचूक नहीं होगी। वह अपनी पूरी शक्ति काम में लगा देगा। वह काम, जो हम कहेंगे। वह क्रांति नहीं करेगा। वह बगावत की बात तक नहीं सोचेगा। क्रोध और घृणा उसमें लेशमात्र भी नहीं होंगे। महत्वाकांक्षाएं तो दूर की बात, वह सुविधाओं की कल्पना भी नहीं करेगा। वह एकदम परफेक्ट गणित के सिद्धांत की तरह का आदमी होगा। रेलगाड़ी की तरह एक सीध में, एक लाइन में दौड़ता चला जायेगा!'

'वह सब तो ठीक है किंतु कृपा करके यह बताओ कि क्या वह प्रेम कर सकेगा?' भगवान अमृतांशु ने विकल होकर पूछा।

'प्रेम! क्या बकते हो?' वह युवक बौखलाकर बोला, 'अरे प्रेम तो प्रेम, वह बीड़ी तक पीने की इच्छा न करेगा।'

भगवान अमृतांशु ने अत्यंत करुणा से भरकर उसकी ओर देखा, 'तब ठीक है। तुम नया मनुष्य नहीं, नई रेलगाड़ी हो तैयार कर रहे हो।' उन्होंने कहा और चल पड़े। वह युवक हक्का-बक्का, भौंचक्का-सा खड़ा उन्हें जाता देखता रह गया।

भगवान अमृतांशु तेजी से चलते हुए शहर के उस हिस्से में आये जो किसी फैक्टरी का पिछला भाग-सा लगता था। बड़ी गंदगी थी वहां। अनुपयोगी मानव-केश, विकृत मानव-चर्म, खराब हो गयीं मानव-हड्डियां और सड़े दांतों तथा फूटी हुई आंखों आदि के ढेर पड़े हुए थे। जगह-जगह खराब खून और अतिशय मल-मूत्र के नाले बह रहे थे। वे रास्ता काटकर एक छोटे से द्वार के निकट आये। यहां से शायद शहर रूपी कारखाने का अंत होता था। वे जल्दी से दरवाजा लांघकर दूसरी ओर निकल गये। दूसरी ओर आते ही वे हैरान रह गये। एक पूरा का पूरा शहर इस तरफ भी था।

वे धीमी गति से पैर रखते हुए आगे बढ़े। थोड़ी दूर आते ही उन्होंने देखा कि पचासों आदमी एक गोल घेरे में घूम रहे हैं। कुछ लोगों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ रखा है और कुछेक लाठियों के सहारे चल रहे हैं। वे उनके पास जाकर खड़े हो

गये । किसी ने उनकी ओर सिर तो सिर, आंख तक नहीं उठायी ।

'अब कितनी दूर है ?' एक युवक ने अपने उस साथी से जिसका हाथ उसने पकड़ रखा था पूछा ।

'बस थोड़ी दूर और । मंजिल निकट ही है ।' उसके साथी ने कहा ।

भगवान अमृतांशु एकदम हैरान रह गये । राह चाहने वाला और राह दिखाने वाला दोनों ही अंधे प्रतीत होते थे । उन्होंने आगे बढ़कर एक लकड़ी वाले से पूछा, 'कहां जा रहे हो ?'

'अपने घर ।' अति विश्वास से भरा उत्तर आया ।

'जानते हो तुम एक गोल घेरे में घूम रहे हो ? इस तरह से कभी अपने घर न पहुंच पाओगे ।' वे करुणापूर्ण स्वर में बोले ।

'तू कौन है रे ? चुपकर और अपना रास्ता नाप ! जानता नहीं ? ये रास्ता मेरे गुरु का बताया हुआ है !' उस अंधे ने उन्हें मारने के लिए अपनी लकड़ी उठायी । वे मुस्कराकर चल पड़े । वह अंधा व्यक्ति अपनी लकड़ी से अपने निकट की भूमि को बेतहाशा पीटने लगा ।

भगवान अमृतांशु दाहिनी ओर से आ रहे भयंकर शोरगुल को सुनकर उस ओर मुड़ गये । निकट जाकर देखा, एक चौपाल पर पंडितों से दिखायी देते सैकड़ों लोग बैठे जोर जोर से कुछ बोल रहे हैं । विद्वानों की सभा समझकर वे चुपचाप वहां जा खड़े हुए किंतु कुछ ही क्षणों में वे दुबारा हैरानी से भर उठे क्योंकि हर विद्वान अपनी ही हांके चला जा रहा था, कोई दूसरे को सुन नहीं रहा था । उन्होंने अपने नजदीक वाले व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखकर अत्यंत स्नेह से कहा, 'मित्र, तुम जो तर्क दे रहे हो, वही बात तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी भी कह रहा है । जरा उसे ठीक तरह से सुनो, फिर उत्तर दो ।'

'क्या कहा ? तूने कुछ कथोपकथन किया क्या रे ?' वह आदमी एक हाथ मुंह पर रखकर चिल्लाया । भगवान अमृतांशु ने चौंककर सभा पर दृष्टि डाली । किसी ने इस महापुरुष की चिल्लाहट पर ध्यान नहीं दिया था । उन्होंने पुनः उस व्यक्ति से अपनी बात दुहरायी और वह व्यक्ति अचानक संस्कृत के श्लोक, भाषा-टीका सहित बोलने लगा । एकाएक भगवान अमृतांशु समझ गये । वे ठठाकर हंसे, 'बहरों की सभा है !' वे जोर से बोले और चल पड़े ।

राह में उन्हे लंगड़ों की एक बारात मिली जो बस-स्टॉप पर हवाई जहाज की प्रतीक्षा कर रही थी । उनके ठीक सामने बनिये की एक दुकान पर गूंगों की एक टोली गुड़ खा-खाकर गड़ की प्रशंसा में गीत गाये चली जा रही थी । भगवान अमृतांशु अत्यंत

द्रवित हो गये। ये सब उस बड़ी फैक्टरी के बाय-प्रॉडक्ट मालूम दे रहे थे। उन्होंने घूमकर पीछे देखा। दाहिना हाथ उठकर कटि तक आया। उन्होंने अपनी हथेली फैला दी। वरद्-मुद्रा बनी।

कारखाना ज़ोरों से घड़घड़ाकर बंद हो गया।

धुआं छंट गया।

पुराने मनुष्य ने नई श्वास ली।

अंधे आंखें मलकर नाच उठे।

बहरे एक दूसरे से गले मिलने लगे।

लंगड़ों ने दूसरा पैर भूमि पर रखा और अपने रास्ते चल पड़े।

गूंगों ने स्वाद पाया और मौन हो गये।

० ० ०

चलते-चलते भगवान अमृतांशु सहसा रुक गये। उनके चेहरे पर एक निश्चय उभरा। धीरे से उन्होंने दाहिना कंधा हिलाया। कंधे के पीछे से चौथा बाहु दिव्यशंख धारण किये हुये प्रगट हो गया। वे अत्यधिक प्रेम से मुस्कराते हुए उस दिव्य शंख को अपने मुख पर ले गये।

हवाएं सनसनाकर बह चलीं।

सागर उफन आया।

पृथ्वी नाच उठी।

दसों दिशाएं एक अपूर्व, अलौकिक स्वर से गुंजायमान हो गयीं–

...भय नकारात्मक गुण है, भय का कोई अस्तित्व नहीं,

भय प्रेम का अभाव है।

प्रेम को जन्मायें, भय की संभावना नहीं रहेगी।

प्रेम दान है, भिक्षा नहीं।

भय भिखारी बनाता है, प्रेम सम्राट बनाता है।

जहां प्रेम है, वहां आनन्द पैदा होगा, शांति पैदा होगी, करुणा, दया, सौंदर्य पैदा होगा। वहां स्वर्ग के द्वार खुलेंगे।

जहां प्रेम दिया जाता है, वहां वह अनंत गुना होकर वापस लौटता है।

आदमी के भीतर इतना प्रेम छिपा है जिसका कोई हिसाब नहीं। अगर एक आदमी के भीतर प्रेम पूरा बहना शुरू हो जाये तो यह दुनिया छोटी पड़ जाये, बहुत छोटी!...

० ० ० ०

'मां! मां! देखो रेडियो को क्या हो गया है?' किशोर बालक रेडियो के नॉब को घुमाने की सशक्त चेष्टा करते हुए चिल्लाया।

'क्या हो गया है रेडियो को जो इतना चिल्ला रहा है,' किचन से निकलते हुए मां ने पूछा और ठगी-सी खड़ी रह गयीं!

'प्रेम परमात्मा का द्वार है।'------ रेडियो कह रहा था।

० ० ०

शंख गूंज रहा था।

....आदमी केवल बद्धि नहीं है।

आदमी के जीने का स्रोत बुद्धि से कहीं गहरे है।

बुद्धि तीन हजार वर्ष आगे चली गयी है, शेष मनुष्य पीछे रह गया है।

बुद्धि के पास हृदय नहीं होता।

बुद्धि की यह जो हृदयहीन पहुंच है जीवन के प्रति, उसने ही जीवन को यांत्रिकता प्रदान की है। मनुष्य रोज रोज मशीन होता चला जा रहा है।

बुद्धि की शिक्षा जीवन को सब तरह की अनुभूतियों से क्षीण और वंचित करती है। इस शिक्षा ने एक अत्यंत असंतुलित मनुष्य को पैदा कर दिया है।—

० ० ०

'क्या हो गया है यार, तेरे इस ट्रांजिस्टर को?' तरुण ने अपने साथी से कहा।

'क्यों, क्या बात है?' साथी ने उसकी ओर सिर उठाया।

'जो भी स्टेशन लगाता हूं, इसी एक आदमी की आवाज सुनायी पड़ रही है।' तरुण ने हैरान होकर कहा।

'आवाज भी कितनी प्यारी हैं यार, सुन'----

----हर युग में कुछ चीजें जला देनी पड़ती हैं ताकि हम अतीत से मुक्त हो जायं, आगे बढ़ जायं। ताकि परम्पराओं से मुक्त हो जायें--जीवन गतिमान हो जाये। नदी जब समुद्र को दौड़ती है, चट्टानें दरख़्त तोड़ती हैं--बाधाएं मिटाती बढ़ती है। पीछे की तरफ हमारी टांगें कसी हुयी हैं जंजीरों से और आगे की तरफ हम मुक्त नहीं हो पाते तो प्राण तड़फड़ा उठते हैं कि तोड़ दो सब। ---ट्रांजिस्टर बोलता चला जा रहा था।

० ० ०

शंख अभी भी गूंज रहा था ---

...आदमी की जिन्दगी को फ़क्टरी बनाना हो तो बुद्धि पर भवन खड़ा

होना चाहिए और आदमी की जिन्दगी को एक मंदिर बनाना हो तो प्रेम पर बुनियाद रखी जानी चाहिए।

बचपन के सारे क्षण हृदय के विकास के लिए चाहिए। हृदय के विकास के लिए जरूरी है कि बच्चा खुले आकाश के नीचे, दरख़्तों के पास हो, चांद-तारों की छाया में हो, नदी-समुद्र के किनारे हो, खुली मिट्टी और पृथ्वी के संसर्ग में हो।

बच्चा जितने विराट के निकट होगा, उतने ही प्रेम का उसके भीतर जन्म होगा।

प्रकृति का सान्निध्य जिन बच्चों को नहीं मिलता, उन बच्चों को परमात्मा का सान्निध्य भी नहीं मिलता; क्योंकि प्रकृति का द्वार है परमात्मा का।---

० ० ०

वृद्ध ने अपने रेडियो-सेट को दोनों हाथों से कसकर पकड़ा और पूरी शक्ति लगाकर उसे झिंझोड़ा।

'सुई तो घूमती है।' वह अपने आप में बुदबुदाया, 'फिर सिलोन क्यों नहीं पकड़ रहा ?'

---मनुष्य के निर्माण में मनुष्य स्वयं ही पत्थर है, स्वयं ही कारीगर। और स्वयं ही वे उपकरण जिनसे कि एक पाषाण प्रतिमा में परिवर्तित होता है।--- रेडियो-सेट फुल-वाल्यूम में बोल रहा था।

० ० ०

भगवान अमृतांशु एक ही स्थान पर रुके शंख फूंके चले जा रहे थे।

१२-३४६ बेलासिस ब्रिज
तारदेव, बम्बई-३४

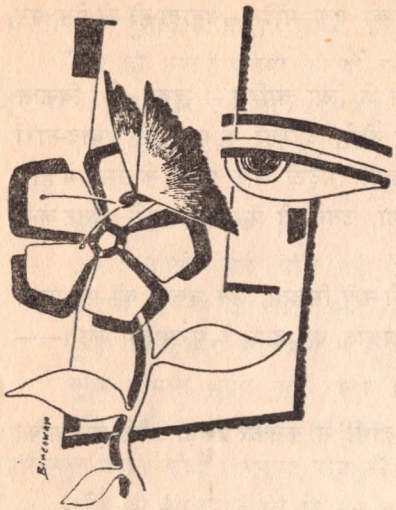

जागते...जागते

कर्म मेरा, फल तेरा

एक तो वह समझ है जो बुद्धि से आती है, वह बहुत गहरी नहीं होती है। एक और समझ है जो हृदय से आती है। बुद्धि कभी भी अहंकार के पार नहीं जाती। बुद्धि सदा कहती है 'मैं', कभी कभी हृदय कहता है 'तू'। इसलिए जब भी आप प्रेम में होते हैं तब बुद्धि को छुट्टी दे देनी पड़ती है। क्योंकि तू कहने का क्षण आ गया है। अब हृदय से कहना पड़ा। फिर बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी प्रेम के क्षणों में बुद्धिमान नहीं होता। बालक जैसा हो जाता है। छोटे बच्चे जैसा हो जाता है। बुद्धि तो सदा ही कहेगी—कर्म किया मैंने तो फल मिले मुझे। बुद्धि का गणित साफ है। ठीक भी है कि कर्म किया मैंने, फल मिले मुझे। पर गीता में कृष्ण बड़ी अबौद्धिक बात कहते हैं कि कर्म करो तुम, फल दे दो प्रभु को। तो बुद्धि कहेगी कि फिर कर्म भी कर लें प्रभु, फल भी ले लें वही। हमें क्यों फसाते हो? हमारा क्या लेना देना है? हम तो कर्म करेंगे तो फल भी लेंगे हम। गणित सीधा और साफ है। ठीक दुकान और बाजार का गणित। कर्म करेंगे हम तो फल वह कैसे लेगा? यह तो अन्याय है, सरासर अन्याय है। और अगर कहीं कोई अदालत हो विश्व के नियंता की तो हम सबको फरियाद करनी

चाहिए कि फल दें तुम्हें और कर्म करें हम? यह तो सरासर लूट है! नहीं, बुद्धि के लिए इससे अन्य गणित काम नहीं करेगा। इसलिए बुद्धि की समझ कभी भी इस स्थिति में नहीं पहुंच पाती कि कर्म मेरा, फल तेरा। सिर्फ हृदय की समझ पहुंच पाती है। लेकिन हृदय की समझ का क्या मतलब होता है? समझ तो सब बुद्धि की है हमारे पास। हृदय की हमारे पास कोई समझ नहीं है। हृदय की समझ का मतलब यह है—श्वास मुझे मिलती है तो परमात्मा से, प्राण मुझे मिलता है तो परमात्मा से, जन्म मुझे मिलता है तो परमात्मा से, जीने का क्षण मुझे मिलता है तो परमात्मा से। अगर मैं न जीता होता तो कोई भी तो उपाय नहीं था कि मैं किसी से भी कह सकता कि मैं जीता क्यों नहीं हूं? अगर मैं अस्तित्व में न होता तो शिकायत करने की भी कोई जगह न थी कि मैं अस्तित्व में क्यों नहीं हूं? और अगर आज मैं अस्तित्व में हूं तो मैं यह भी तो नहीं जानता, मैं अस्तित्व में क्यों हूं? जब अस्तित्व के दोनों ही छोर अज्ञात हैं तो तर्क से उन्हें नहीं खोला जा सकता। क्योंकि तर्क से ज्ञात को खोल सकते हैं। अज्ञात, तर्क के लिए बिल्कुल बेमानी है। अज्ञात में तो हृदय ही टटोलना होगा। अज्ञात में तो टटोला ही जा सकता है। न मुझे पता है कि मैं कहाँ से आता हूं, न मुझे पता है कि मैं कहाँ जाता हूं, न मुझे पता है कि क्यों हूं, न मुझे पता है कि अगली सांस आयेगी कि नहीं आयेगी! जहां इतना सब अज्ञात है, जहां सारा का सारा मेरा होना ही अज्ञात शक्तियों पर निर्भर है वहां 'मेरा किया हुआ कर्म' पागलपन की बात है। जब मैं ही अज्ञात शक्तियों का किया हुआ हूँ तो मेरा कर्म भी अज्ञात शक्तियों का किया हुआ कर्म है। जब मैं खुद ही अज्ञात से जन्मा हूं तो मेरे हाथ से होने वाला भी अज्ञात से ही जन्म रहा है। मैं सिर्फ बीच का माध्यम हूं। लेकिन ये तर्क और बुद्धि की बात नहीं, क्योंकि तर्क और बुद्धि पूछती है क्यों? और जहां क्यों का उत्तर नहीं मिलता, तर्क और बुद्धि वहां से लौट आती है। वह कहती है वह हमारा क्षेत्र नहीं है। वह है ही नहीं। जहां क्यों का उत्तर नहीं मिलता वह है ही नहीं। जहां क्यों का उत्तर मिल जाता है वही है। लेकिन हृदय वहां खोजता है जहां क्यों का उत्तर नहीं है। और बड़े मजे की बात है कि जीवन के समस्त गहरे प्रश्न बुद्धि के लिए खुलने योग्य नहीं हैं, मिस्टिरियस हैं। बुद्धि से कुछ भी गहरा प्रश्न खुला नहीं कभी, सिर्फ उलझा। और भी उलझा है। थोड़ा सा खुलता लगता है तो हजार नयी उलझनें खुल जाती हैं और कुछ भी नहीं खुलता।

अज्ञात से आता हूँ मैं, अज्ञात को जाता हूं इसलिए मेरे हाथों से जो भी हो रहा है वह भी अज्ञात ही कर रहा है। अगर मैंने किसी के पैर दबा दिये हैं, अगर मैंने राह चलते किसी गिरे आदमी को उठा दिया है, अगर मैंने चौरस्ते पर खड़े होकर किसी को बता दिया है कि बायें से जाओ तो नदी पर पहुंच जाओगे—तो यह मेरी अंगुली का इशारा, यह मेरे हाथों की ताकत मेरी नहीं है। यह ताकत और यह इशारे सब अज्ञात से मुझमें आते हैं और मुझसे अज्ञात में चले जाते हैं। ऐसी हृदय की समझ गहरी हो जाय तो व्यक्ति ईश्वर-अर्पण कर पाता है। और अत्यंत अनुग्रह पूर्ण होकर कह पाता है कि कर्म भी तेरा और फल भी तेरा।

★

कोई मरता नहीं तब हिंसा कैसी ?

अहिंसा का मार्ग क्या है ? अहिंसा का मार्ग क्या यह है कि मैं किसी को न मारूं ? अगर यह है तो कृष्ण की बात फिर उल्टी है, वह हिंसा का मार्ग बता रहे हैं। नहीं, अहिंसा के मार्ग का अर्थ बहुत गहरा है जितना कि अहिंसक कभी भी नहीं समझ पाता। तथाकथित अहिंसक समझते हैं कि वे नानवायलेंट हैं। नान-वायलेंस के मानने वाले हैं, उनको भी पता नहीं कि अहिंसा का क्या अर्थ है ? किसी महावीर को कभी पता होता है कि अहिंसा का क्या अर्थ है ? अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि तुम किसी को मत मारो। क्योंकि अगर अहिंसा का यह मतलब है कि तुम किसी को मत मारो तब तो अहिंसा का यह मतलब हुआ कि आत्मा मर सकती है। महावीर तो निरंतर चिल्लाकर कहते हैं कि आत्मा अमर है। जब महावीर कहते हैं कि आत्मा अमर है तो तुम मार ही कैसे सकते हो ? जब मार ही नहीं सकते तो हिंसा की बात कहां रही ? हां, इतना ही कर सकते हो कि शरीर और आत्मा को अलग कर दो, तो शरीर सदा से मरा हुआ है और आत्मा कभी मरी हुई नहीं है। तो मरे हुए को गैर मरे हुए से अगर किसी ने अलग भी कर दिया तो हर्ज क्या है ? कुछ भी तो हर्ज नहीं है। महावीर खुद कहते हैं—आत्मा अमर है, इसलिए महावीर का यह मतलब नहीं हो सकता अहिंसा से, कि तुम किसी को मारो मत। महावीर का भी मतलब यही है, कृष्ण का भी मतलब यही है कि मारने की इच्छा मत करो। मरता तो कोई कभी नहीं, लेकिन मारने की इच्छा की

जा सकती है। और पाप मारने से नहीं लगता, मारने की इच्छा से लगता है। मरता नहीं कोई। मैंने एक पत्थर उठाया और आपका सिर तोड़ देने के लिए फेंका। नहीं लगा पत्थर और किनारे से निकल गया। कुछ चोट नहीं पहुंची, कहीं कुछ नहीं हुआ। लेकिन मेरी हिंसा पूरी हो गयी। असल में मैंने पत्थर फेंका तब हिंसा प्रकट हुई – पत्थर फेंकने की कामना की, आकांक्षा की, वासना की, तभी हिंसा पूरी हो गयी। पत्थर फेंकने की वासना कर सकता हूं, इसकी संभावना मेरे अचेतन में छिपी है तभी हिंसा हो गयी। मैं हिंसा कर सकता हूं तो मैंने हिंसा कर दी। हिंसा का सम्बन्ध किसी को मारने से नहीं, हिंसा का संबंध मारने की वासना से है। अहिंसा का मार्ग किसी को मारने की वासना से मुक्त हो जाना है। इसे जरा समझना पड़ेगा।

जो किसी को मारने की वासना से मुक्त हो जाते हैं, वे भी पहुंच जाते हैं वहीं जहां कोई योग से, कोई सांख्य से, कोई सेवा से, प्रभु अर्पण से पहुंचता है। अहिंसा की कामना या हिंसा की वासना से मुक्त हो जाने का क्या अर्थ है ? बहुत मजे की बात है कि सारे भिन्न भिन्न मार्ग बहुत गहरे में कहीं एक ही मूल से जुड़े हुए हैं। जब तक मनुष्य के मन में इन्द्रियों का लोभ है, इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए विक्षिप्त है, तब तक हिंसा से मुक्ति असंभव है। इंद्रियाँ पूरे समय हिंसा कर रही हैं। जब आपकी आंख किसी के शरीर पर वासना बन जाती है तब हिंसा हो जाती है। आपने बलात्कार कर लिया। अदालत में नहीं पकड़े जा सकते हैं आप, क्योंकि अदालत के पास आंखों से किये गये बलात्कार को पकड़ने का अब तक कोई उपाय नहीं है। लेकिन जब आंख किसी के शरीर पर पड़ी, आंख मांग बन गयी, काम बन गयी, वासना बन गयी। और आंख ने एक क्षण में उस शरीर को चाह लिया, पजेस कर लिया। एक क्षण में उस शरीर को भोगने की कामना का धुआं चारों तरफ फैल गया, बलात्कार हो गया। आंख से हुआ। आंख शरीर का हिस्सा है। आंख से हुआ, आंख के पीछे आप खड़े हैं। आंख से हुआ, आपने किया, हिंसा हो गयी। हिंसा सिर्फ छुरा भोंकने से नहीं होती, आंख भोंकने से भी हो जाती है।

इन्द्रियां जब तक आतुर हैं भोगने को तब तक हिंसा जारी रहेगी। इंद्रियां जब भोगने को आतुर नहीं रहतीं तभी हिंसा से छुटकारा है। जिसे हम हिंसा कहते हैं वह कब पैदा होती है ? यह सूक्ष्म हिंसा छोड़ें, जिसे हम हिंसा कहते हैं– स्थूल, वह कब पैदा होती है ? वह तभी पैदा होती है जब आपकी किसी कामना में अवरोध आ जाता है, अटकाव आ जाता है तभी पैदा होती है। अगर आप किसी के शरीर को भोगना चाहते हैं और कोई दूसरा बीच में आ जाता है या जिसका शरीर है

वही बीच में आ जाता है कि नहीं भोगने देंगे तब हिंसा शुरू होती है। जब भी आपकी इन्द्रियां भोगने के लिए कहीं कब्जा मांगती हैं और कब्जा नहीं मिल पाता तभी हिंसा शुरू हो जाती है, स्थूल हिंसा शुरू हो जाती है। सूक्ष्म हिंसा पहले, भाव हिंसा पहले, फिर हिंसा सक्रिय होती और स्थूल बन जाती है। अहिंसा के मार्ग से अर्थ है इन्द्रियों से जिसने अब भोगना छोड़ दिया, इन्द्रियां जिसकी भिक्षापात्र न रहीं, इंद्रियों से जिसने छेड़ना छोड़ दिया, इंद्रियां जिसके शस्त्र न रहीं, इंद्रियों से जिसने आक्रमण छोड़ दिया। महावीर का बहुत कीमती शब्द यहां ख्याल में रख लेना उपयोगी होगा।

महावीर ध्यान के पहले प्रतिक्रमण शब्द का उपयोग करते हैं। ध्यान में जाना हो तो पहले प्रतिक्रमण। कभी आपने सोचा है? प्रतिक्रमण का मतलब होता है आक्रमण से उल्टा। आक्रमण का मतलब है दूसरे पर हमला। प्रतिक्रमण का मतलब है, आक्रमण की सारी शक्तियों को अपने में वापस लौटा ले जाना। 'एग्रेसन'– आक्रमण। प्रतिक्रमण–'रीग्रेसन,' 'कमिंग बैक टू वनसेल्फ'। आंख गयी आप पर आक्रमण करने को, तो हिंसा हो गयी। और मैंने आंख को वापस लौटा लिया उसकी पूरी कामना के साथ, अपने भीतर गहरे में वहां जहां से उठती है कामना, वहीं उसे ले गया वापस, तो यह हुआ प्रतिक्रमण। और जब प्रतिक्रमण हो तभी महावीर कहते हैं कि ध्यान हो सकता है अन्यथा ध्यान नहीं हो सकता। क्योंकि आक्रमण करनेवाली इन्द्रियों के साथ ध्यान कैसा ? प्रतिक्रमण करने वाली इन्द्रियों के साथ ध्यान फलित हो सकता है अर्थात्, आक्रमण जो नहीं कर रहा। ध्यान रखें, अगर ठीक से समझें तो किसी भी तल पर आक्रमण की कामना हिंसा है। सूक्ष्म से सूक्ष्म तल पर भी आक्रमण की इच्छा हिंसा है। अनाक्रमण, नान–एग्रेसन ? प्रतिक्रमण, शक्तियों को लौटा लेना वापस अपने में। आंख लौट जाय आंख के मूल में, कान लौट जाय कान के मूल में, स्वाद लौट जाय स्वाद के मूल में, फैलाव बन्द हो, सब सिकुड़ जाय अपने मूल में। जब ऐसा प्रतिक्रमण फलित हो तब व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध होता है। अहिंसा का अर्थ है प्रतिक्रमण, लौटना, कमिंग बैक टू वनसेल्फ। हिंसा का मतलब है जाना, दूसरे के ऊपर, किसी भी रूप में दूसरे के ऊपर जाना। दूसरे पर जाना। यह हिंसा शत्रुतापूर्ण भी हो सकती है, मित्रतापूर्ण भी हो सकती है। जो नासमझ हैं वे शत्रुता के ढंग से दूसरे पर जाते हैं, जो होशियार हैं वे मित्रतापूर्ण ढंग से दूसरों के ऊपर जाते हैं। लेकिन जब कोई दूसरे पर जाता है तब हिंसा है, और जब कोई दूसरे पर जाता ही नहीं, अपने जाने को ही वापस लौटा लेता है तब अहिंसा है।

तथ्य व्यर्थ पर संभावनाओं का अर्थ

ईश्वर जप का क्या अर्थ है – स्वाध्याय के संदर्भ में? क्योंकि ईश्वर जप के बहुत अर्थ हैं, अलग अलग रिफरेंस में। स्वाध्याय के संदर्भ में ईश्वर जप की बात करनी है। यदि आदमी अपने अंधेरे का साक्षात्कार करे, अपनी बुराई का, अपनी बीमारी का, अपनी रुग्णता का, भीतर के पाप, अपराध, उन सबका,–कहें एक शब्द में, अपने भीतर छिपे नर्क का, तो यह आधी बात होगी। अगर आदमी सिर्फ अपने भीतर छिपे नर्क का ही अनुभव करे तो यह भी हो सकता है कि सेल्फ कन्डमनेशन में पड़ जाय, आत्मनिन्दा में पड़ जाय। यह भी हो सकता है कि इतना नर्क देखकर समझे कि जीवन व्यर्थ है बेकार है, सब पाप है, सब नर्क है। यह खतरा है। और पश्चिम में यह खतरा हो गया। मनोविश्लेषण ने स्वाध्याय की प्रक्रिया लोगों को दे दी लेकिन ईश्वर जप का कोई ख्याल नहीं दिया। इसलिए पश्चिम में आज जीवन अर्थहीन है। लोग कहते हैं, सब पाप ही पाप है, घृणा, हिंसा और ईर्ष्या ही है तो जीने का अर्थ क्या? न कहीं कोई प्रेम है, न कहीं कोई क्षमा है, सब धोखा है। प्रेम के पीछे सेक्स दिखायी पड़ने लगा स्वाध्याय में। सब प्रेम की बात-चीत 'फोर प्ले' हो गयी, सब प्रेम की बात-चीत 'सेक्स के लिए परसुएशन' है। सब प्रेम की बात-चीत के पीछे शरीर को भोगने की आकांक्षा है। प्रेम सिर्फ तैयारी है, इन्तजाम है। कविताएं वगैरह सब इन्तजाम हैं। प्रेम की सब बात-चीत सब इन्तजाम है। शरीर का शरीर के साथ भोग वही अंत में है। तो पश्चिम ने इधर पचास वर्षों में आत्म–विश्लेषण करके यह जाना कि प्रेम है ही नहीं। सिर्फ काम है। इससे खतरा हुआ। इसका मतलब हुआ कि प्रेम की कोई संभावना ही नहीं है। इसलिए भोगो काम को और जो है सो ठीक है। इससे रूपांतरण नहीं हुआ, बल्कि आदमी का पतन हुआ।

ईश्वर जप का मतलब है–दूसरा पहलू भी स्मरण रखना। प्रेम के पीछे वासना है यह हमारा तथ्य है, लेकिन वासना में से भी प्रेम का जन्म हो सकता है, यह हमारी संभावना है। ईश्वर जप का अर्थ है संभावना को याद रखना। आदमी के भीतर ईश्वर की संभावना है। तथ्य को ही सब मत समझ लेना। तथ्य के भीतर छिपा हुआ अप्रगट भी कुछ है। विराट भी कुछ है। अर्थ भी कुछ है। अभिप्राय भी कुछ है। ईश्वर जप का अर्थ है– स्मरण रखना कि कितना ही वह गहरा पाप हो, पुण्य का अभाव नहीं है। कितना ही वह गहरा अपराध हो, क्षमा की असंभावना नहीं है। कितना ही वह अंधकार हो, न दिखायी पड़ती हो प्रकाश की कोई किरण,

तो भी प्रकाश है। ईश्वर जप का अर्थ है– अंधकार के गहन निबिड़ भटकाव में भी प्रकाश का स्मरण। पाप के मध्य भी परमात्मा की स्मृति। अपराध के मध्य भी भक्त होने की सम्भावना के द्वार का ख्याल,–'रिमेम्बरिंग'। ईश्वर जप न हो तो अकेला स्वाध्याय खतरनाक भी हो सकता है। होगा ही, ऐसा नहीं, हो सकता है। अकेला स्वाध्याय निराशा बन सकता है, ईश्वर जप आशा है। और आशा अगर बिल्कुल न हो ख्याल में, तो निराशा आत्मघाती, 'सुसाइडल' हो जाती है। इसलिए पश्चिम में आत्महत्या बढ़ी। विगत पचास वर्षों में जैसे जैसे मनोविश्लेषण बढ़ा वैसे वैसे आत्महत्या बढ़ी। और जैसे जैसे आत्मविश्लेषण आदमी ने किया वैसे वैसे हत्या की ओर उन्मुख हुआ क्योंकि पाया कि सिवाय नर्क के कोई स्वर्ग नहीं है। नर्क ही बस सब है। कहीं कोई स्वर्ग नहीं है। फिर जीने की क्या जरूरत है? बीज कुरूप सिद्ध हुआ और वृक्ष का हमें कोई पता न हो। बीज बेहूदा मालूम पड़े और भीतर छिपे अंकुर के सौन्दर्य की हमें कोई स्मृति न हो। बीज फेंक देने जैसा मालूम पड़े और बीज में छिपे हुए अनन्त फूल जो आकाश में खिल सकते हैं, सूरज की रोशनी में नाच सकते हैं, सुवास से भर सकते हैं दिग्दिगंत को, उनका हमें कोई पता न हो, तो अकेला स्वाध्याय खतरनाक हो सकता है। इसलिए तत्काल स्वाध्याय के साथ ईश्वर जप जुड़ना ही चाहिये।

ईश्वर जप पुराने दिन की भाषा है। आज की भाषा में कहना हो तो कहना होगा मनुष्य की संभावनाओं का स्मरण। आदमी ईश्वर हो सकता है, है नहीं। है तो आदमी बिल्कुल ही राक्षस, है तो आदमी बिल्कुल दानव, पर हो सकता है देव। जो है, अगर वही दिखाई पड़े तो खतरनाक हो सकता है। जो हो सकता है उसकी स्मृति की किरण अंधकार में उतरती रहे। जप का अर्थ है स्मरण। और जप का क्या अर्थ होता है? एक ही बात को बार बार दोहराना। अंधेरा है बहुत, प्रकाश कहीं दिखायी नहीं पड़ता बार बार भूल जाता है कि प्रकाश हो सकता है। उसे बार बार स्मरण रखना है कि प्रकाश हो सकता है। नहीं तो अंधेरे में डूब जाने का डर है।। और अगर अंधेरा ही है तो पैरों के रुक जाने का भय है, वे जवाब दे दें कि बढ़ने से फायदा क्या? कहीं भी जाओ, अंधेरा है। कहीं भी पहुंचो अंधेरा है। कहीं कोई मंजिल नहीं प्रकाश की। ईश्वर जप का अर्थ है रिमेम्बरिंग उसकी स्मृति, जो हो सकता है। जो छिपा है और प्रगट नहीं है, लेकिन प्रगट हो सकता है। लेकिन पुराने दिनों में ईश्वर जप कहना काफी था।

एक आदमी सुबह उठता है, सुबह नींद टूटती है और पहला शब्द होता है 'राम'। आ रहा है दिन सामने जहां राम से मिलने की कम संभावना है, रावण

से ही मिलने की संभावना है। उग रहा है दिन– जहां अयोध्या नहीं होगी, लंका ही होगी। हो रही है सुबह– आदमी का जगत–जाल का, जंजाल का, प्रपंच का शुरू होगा, लेकिन आदमी सुबह उठकर पहली बात स्मरण करेगा– राम। वह यह कह रहा है, है सब बुरा लेकिन शुरुआत मैं स्मरण से करता हूं शुभ की। दिन में भी, राह चलते भी हमने नमस्कार की जो विधि बनायी थी उसे ईश्वर जप से जोड़ दिया। दुनिया में उतनी गहरी विधि कहीं भी नहीं है। अगर पश्चिम में दो आदमी मिलते हैं तो कहते हैं; 'गुडमार्निंग' सुबह अच्छी है। साधारण लौकिक वक्तव्य है। उससे कहीं कोई संभावना का द्वार नहीं खुलता। इस मुल्क में, इस जमीन के टुकड़े पर दो आदमी मिलते हैं तो कहते हैं, 'राम राम'। जो आदमी सामने है उसके राम नहीं, रावण होने की संभावना ज्यादा है, लेकिन स्मरण राम का है। स्मरण संभावना का ही है। 'गुडमार्निंग' बहुत 'सिकुलर' है, उसमें कोई बहुत गहराई नहीं है। बहुत साधारण है। सुबह सुन्दर है। लेकिन जब दो आदमी हाथ जोड़ते हैं एक दूसरे को और कहते हैं राम– तो वह दूसरे की संभावनाओं को हाथ जोड़ते हैं। वह दूसरे में राम को देखने की आकांक्षा प्रगट करते हैं। हाथ जोड़ते हैं सामने खड़े आदमी के लिए नहीं भीतर छिपे राम के लिए। दिन में जब भी, अपरिचित को भी राम-राम करते हैं, अपरिचित को गुडमार्निंग कोई करता नहीं। अभी भी गांवों में ग्रामीण हिस्से से गुजरें तो जो नहीं जानते, वह भी 'राम राम' करते हैं। एक मौका मिला, एक चेतना पास आयी, उसको क्यों न ईश्वर जप बना लिया जाय? एक अवसर मिला, सामने छिपा हुआ राम आया, क्यों न उसे याद कर लिया जाय, खुद भी और उसे याद दिला दी। सांझ थका- मांदा आदमी लौटा है, दिन भर के उपद्रव से, रात सोता है तब फिर राम! माना कि दिन भर सब उपद्रव था, धूल थी, अज्ञान था, गंदगी थी, कुरूपता थी। माना कि यथार्थ यही है लेकिन यथार्थ यह होना नहीं चाहिए। सुबह भी शुरुआत उससे, दिन भी स्मरण उसका, रात भी याद उसकी, आखिरी क्षण सोते समय नींद में उतरते समय, राम! और ध्यान रहे, आखिरी क्षण नींद के द्वार पर जब आदमी खड़ा होता है, जागरण बन्द होता और नींद शुरू होती तब जो ईश्वर जप है वह बहुत गहरा है। क्योंकि उस समय चेतना 'गेयर' बदलती है, उस समय 'कांसेसनेस' 'गेयर' बदलती है। एक गेयर से बिल्कुल दूसरे में जाती है, एक जगत से बिल्कुल दूसरे जगत में प्रवेश करती है। बन्द हुई वह दुनिया जो दुनिया थी, बन्द हुए वे द्वार जो दूसरों से जुड़े थे। अब अपने से जुड़ने का द्वार खुलता है– गहन निद्रा का, जहां प्रकृति की गोद में हम वहीं पहुंच

जायेंगे जहां मूल स्रोत है। अब राम का स्मरण करते हुए कोई सो गया, सोते-सोते-सोते-सोते स्मृति है ईश्वर की। वह गहरी भीतर बैठती चली जाती है, अन्तराल में उतरती चली जाती है। नींद के साथ ही, नींद की गहराई के साथ ही 'एसोसिएट' हो जाती है। 'लॉ ऑफ एसोसिएशन' का उपयोग है। संयोग जोड़ देते हैं हम। सोते समय राम का स्मरण नींद की गहराई से प्रभु के स्मरण का जोड़ने का प्रयोग है। नींद हमारे भीतर गहरी से गहरी चीज है। अगर उससे प्रभु का स्मरण जुड़ जाय तो प्रभु भी हमारी गहरी से गहरी चीज हो जाता है।

दूसरी बात, रात आखिरी समय जो हमारा अंतिम विचार होता है सोने के पहले, वही हमारा सुबह नींद टूटने के बाद पहला विचार होता है। रात का अंतिम विचार सुबह का पहला विचार है। क्यों? क्योंकि नींद में जो विचार प्रवेश कर जाता है उसकी तरंगें रात भर चेतना में डोलती रहती हैं। रात भर डोलती रहती हैं– जैसे फेंक दिया एक कंकड़ झील में, लहरें उठीं और चल पड़ीं। ऐसे ही नींद के पहले क्षण में जो विचार आपके अंतस्तल में उतर जाता है वह रात भर डोलता रहता है। अगर आप आठ घण्टे सोये और राम का नाम जपा, तो आठ घण्टे भीतर सूक्ष्म तरंगें लेता रहा, लेगा, तभी सुबह पहली तरंग बनेगा, नहीं तो नहीं बनेगा। और बन जाता है। सुबह पहला स्मरण श्वास के साथ, पहले श्वास के साथ, पहले होश के साथ, पहले जागरण के साथ 'राम' वापस लौटा। रात भर जो प्रभु स्मरण में डूबा रहा, संभावना बनती है कि उसका दिन भी प्रभु स्मरण का दिन बने।

यह बिल्कुल वैज्ञानिक है, लेकिन जिसने मेकेनिकल कर लिया ईश्वर जप, तो बेकार हो जाता है। एक आदमी ने जल्दी से स्नान किया, घंटी बजाई, राम राम किया, भागा, दफ्तर गया, निपटाया एक काम। काम निपटाने से राम का कभी संबन्ध नहीं जुड़ता। काम नहीं–प्रेम, तो फिर गहरा उतर जाता है। हम काम की तरह करते हैं इसलिए जिन्दगी भर जप करते रहते हैं, कुछ भी हाथ नहीं आता। आयेगा भी नहीं। हजार जिन्दगी करते रहो, कुछ न आयेगा हाथ। नहीं, प्राणों की गहराई में भाव से बिठाने की बात है। बैठ जाय प्राणों की गहराई में तो रोआं-रोआं उससे ही कंपित हो जाता है। फिर स्वाध्याय–स्वयं के गलत को जानना, और ईश्वर जप–स्वयं के शुभ को स्मरण रखना; दोनों के सामंजस्य से जीवन कुछ और ही हो जाता है।

निर्वाण उपनिषद्ः समापन प्रवचन

दिनांक २-१०-७१

स्थान : माउण्ट आबू

ब्रह्मचर्य शान्ति संग्रहणम्
ब्रह्मचर्याश्रमे धीत्य वानप्रस्थाश्रमे धीत्य स सर्वम् विन्नयासम् संन्यासम् ।
अन्ते ब्रह्माखण्डाकारं नित्यं सर्व देहनाशनम् ।
एतन्निर्वाणदर्शनम् शिष्यं विना पुत्र विना न देयम् ।
इत्युपनिषत् ।

अर्थ– ब्रह्मचर्य और शांति जिनकी सम्पत्ति या संग्रह है ।

ब्रह्मचर्याश्रम में, फिर वानप्रस्थाश्रम में अध्ययन से फलित सर्व त्याग ही संन्यास है ।

अन्त में समस्त शरीरों का नाश हो जाता है और ब्रह्म रूप अखण्ड आकार में प्रतिष्ठा होती है ।

यही निर्वाण दर्शन है, जिसका शिष्य या पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी को उपदेश न करना, ऐसा यह रहस्य है ।

(निर्वाण उपनिषद् अंतिम श्लोक)

आचार्यश्री : ब्रह्मचर्य और शांति जिनकी सम्पदा है। सम्पदा किसे कहें? हम जिसे कहते हैं, वह हमसे छीनी जा सकती है। हम जिसे कहते हैं, मृत्यु तो निश्चित ही हमें उससे अलग कर देती है। और हम जिसे सम्पदा कहते हैं उसके कारण सिवाय विपदाओं के हमारे ऊपर आता हुआ और कुछ मालूम नहीं पड़ता है। ऋषि भी इसी बात को सम्पदा कहते हैं। वे उसे सम्पदा कहते हैं जो हमसे छीनी न जा सके। वही सम्पत्ति है। उसी के हम मालिक हैं जो हमसे छीनी न जा सके। जो हमसे छीनी जा सकती है, उसकी मालकियत नासमझी का दावा है। लेकिन हम तो जिन जिन संपत्तियों को जानते हैं, वे सभी हमसे छीनी जा सकती हैं। क्या ऐसी किसी सम्पति का हमें पता है जो हमसे छीनी न जा सके?

बहुत उपनिषद् युगीन कथा है। याज्ञवल्क्य अपनी सारी संपत्ति अपनी दोनों स्त्रियों को सौंपकर संन्यस्त होना चाहता है। उसकी एक पत्नी तो राजी हो गयी। आधी संपत्ति बहुत संपत्ति थी। लेकिन दूसरी पत्नी ने पूछा कि आप जो मुझे दे जा रहे हैं यह क्या है? याज्ञवल्क्य ने कहा, यह सम्पदा है। पत्नी ने कहा, सम्पदा को छोड़कर आप क्यों जा रहे हैं? और अगर आप छोड़कर जा रहे हैं, तो आप किसकी तलाश में जा रहे हैं? पति ने कहा, मैंने तो समझ लिया, यह संपदा नहीं है। मैं असली सम्पदा की खोज में जाता हूं। तो पत्नी ने कहा, फिर असली संपदा की खोज में मुझे भी ले चलें। इस कचरे को मेरे लिए क्यों छोड़े जाते हैं। और अगर आपको पता ही चल गया है कि यह सम्पदा नहीं है तो मुझे देने की बात ही क्यों उठाते हैं।

संपदा जिनके पास है, वे भलीभांति जान लेते हैं, उससे कुछ मिलता नहीं है जो मूल्यवान है। जो भी उससे खरीदा जा सकता है वस्तुतः उसका कोई मूल्य नहीं है। संपत्ति से जो खरीदा जा सकता है, उसका कोई भी ऐसा मूल्य नहीं है जो शाश्वत हो, नित्य हो, ठहरने वाला हो। लेकिन हम अपने खाली मन को भर लेते हैं। ऋषि कहता है, संन्यासी की संपदा क्या है? उसकी सम्पदा को वह कहता है, एक तो ब्रह्मचर्य है। उसका आचरण ऐसे होगा जैसे स्वयं परमात्मा उसके भीतर विराजमान होकर आचरण करता हो। ब्रह्मचर्य शब्द बहुत कीमती है। इसे तथाकथित नीतिवादियों ने बुरी तरह विकृत किया है। 'करप्ट' किया है। क्योंकि जब भी कोई कहता है ब्रह्मचर्य, तो हमें तत्काल ख्याल आता है की 'सेक्स कण्ट्रोल'। काम वासना का नियंत्रण। ब्रह्मचर्य बहुत बड़ा शब्द है। और कामवासना का नियंत्रण बहुत क्षुद्र और साधारण सी बात

है। ब्रह्मचर्य एक बड़ा सत्य है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ होता है, ब्रह्म जैसी चर्या। ऐसे जीना, जैसे परमात्मा ही जी रहा हो। ब्रह्मचर्य बहुत विराट शब्द है और काम वासना का नियंत्रण अति क्षुद्र और साधारण सी बात है। लेकिन हमने इस विराट शब्द को इस बुरी तरह बिगाड़ा है कि पश्चिम में जब अंग्रेजी में अनुवाद करते हैं तो कर देते हैं 'सेलीबेसी'। और उसका अर्थ बहुत और है। अगर परमात्मा की कोई चर्या होगी तो वैसी ही चर्या संन्यासी की चर्या है। असल में संन्यासी इस बोध से ही उठता है कि परमात्मा उठा मेरे भीतर। इस बोध से ही चलता है कि परमात्मा चला मेरे भीतर। इस बोध से ही बोलता है कि परमात्मा बोला मेरे भीतर। इस बोध से जीता है कि परमात्मा जिया मेरे भीतर। संन्यासी स्वयं को तो विदा कर देता है और परमात्मा को प्रतिष्ठित कर देता है। उसका जो भी है, वह सब परमात्मा का है। ऐसे अपने भीतर परमात्मा को जिसने प्रतिष्ठित किया हो, जो परमात्मा का मंदिर ही बन गया हो, उसके आचरण का नाम ब्रह्मचर्य है। निश्चित ही, उसमें काम-नियंत्रण तो आ ही जाता है। उसे, उसकी चर्चा करने की भी जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन ब्रह्मचर्य मात्र काम-नियंत्रण नहीं है, काम-नियंत्रण एक छोटा सा अंग है, ब्रह्मचर्य बहुत बड़ी बात है। ऋषि कहता है, ब्रह्मचर्य सम्पदा है। क्योंकि जिसने यह अनुभव कर लिया कि मेरे भीतर परमात्मा है, उससे अब कुछ भी छीना नहीं जा सकता। एक ही है सत्य जो हमसे छीना नहीं जा सकता, वह सत्य ऐसा होना चाहिए जो हमारा स्वरूप भी हो। जिसे हमसे अलग करने का उपाय ही नहीं है वह केवल परमात्मा है। बाकी सब हमसे अलग किया जा सकता है। मित्र हो, पत्नी हो, बेटा हो सब हमसे जुदा किये जा सकते हैं। अपना शरीर भी अपने साथ नहीं होगा, अपना मन भी अपने साथ नहीं होगा। सिर्फ एक ही सत्य, एक ही अस्तित्व परमात्मा का है जो हमसे छीना नहीं जा सकता। जो हमारा होना ही है, 'द वेरी बीइंग' उसे अलग करने का कोई मार्ग नहीं है। उसे ही ऋषि कहता है—सम्पदा है।

आचरण ब्रह्म जैसा। लेकिन आचरण तो बाहर होता है। आचरण का अर्थ ही होता है, बाहर। चर्या का अर्थ ही होता है बाहर। चर्या का अर्थ ही होता है दूसरों के सम्बन्ध में। अकेले कोई आचरण नहीं होता, आचरण का अर्थ है, 'इन रिलेशनशिप टु समवन'।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बार जुए में पकड़ गया था। एक राजधानी में धर्मगुरुओं की एक बड़ी सभा थी। एक यहूदी धर्मगुरु, एक ईसाई धर्मगुरु, एक हिंदू धर्मगुरु और मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल में ठहराये गये थे। लेकिन रात जुए

में पकड़े गये चारों। अदालत में जब सुबह मौजूद किये गये तब मजिस्ट्रेट भी थोड़ा संकोच से भर गया। कल सांझ ही इनके प्रवचन उसने सुने थे और बड़ा प्रभावित हुआ था। लेकिन पुलिस का आदमी ले आया था अदालत में, तो अब मुकदमा तो चलता ही। फिर उसने सोचा, जल्दी निपटा देने जैसा है। इसे आगे खींचने जैसा नहीं। पूछा उसने ईसाई पुरोहित से कि क्या आप जुआ खेल रहे थे? ईसाई पुरोहित ने कहा, क्षमा करेंगे, 'इट डिपेंड्स हाऊ टू डिफाइन'। यह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगा कि आप जुए की व्याख्या क्या करते हैं। ऐसे तो पूरी जिन्दगी ही जुआ है। मजिस्ट्रेट जल्दी मुक्त करना चाहता था। उसने देखा, यह तो लम्बा थियोलाजी का मामला हो जायेगा। उसने कहा, साफ साफ कहिये, आप जुआ नहीं खेल रहे थे? ईसाई पादरी ने कहा, पूरी जिन्दगी जुआ है जहां, वहां जुए से बचा कैसे जा सकता है? फिर भी जज ने कहा, मैं समझ गया, आप जुआ नहीं खेल रहे थे, आप बरी किये जाते हैं। ईसाई पादरी बाहर चला गया। यहूदी रबी से पूछा, आप जुआ खेल रहे थे? क्योंकि आपके सामने टेबल पर रुपये रखे थे। और ताश पीटे जा रहे थे। यहूदी रबी ने कहा, क्षमा करें, अभिप्राय अपराध नहीं है। अभी जुआ शुरू नहीं हुआ था, अभी सिर्फ आशय था। हम शुरू करने को ही थे जरूर, लेकिन अभी शुरू नहीं हुआ था और जो शुरू नहीं हुआ अभी अदालत के कानून के बाहर है। जज ने कहा—आप बरी किये जाते हैं, आप जुआ नहीं खेल रहे थे। सिर्फ अभिप्राय था, अभिप्राय पर कोई कानून नहीं लग सकता। आप जायें। हिन्दू धर्मगुरु से पूछा, आप भी इसमें सम्मिलित थे? हिन्दू धर्मगुरु ने कहा, यह जगत माया है। दिखायी पड़ता है वैसा है नहीं। 'इट जस्ट एपियर्स'। कैसा जुआ, कैसे पत्ते, कौन पकड़ा गया, किसने पकड़ा? मजिस्ट्रेट ने कहा, मैं समझा। आप जायं। जब जगत ही असत्य है तब कैसा जुआ? बिल्कुल ठीक कहते हैं। लेकिन मुल्ला बहुत मुसीबत में था। क्योंकि उसी के हाथ में पत्ते पीटते हुए पकड़े गये थे। और उसी के सामने पैसे का ढेर भी लगा था। मजिस्ट्रेट ने कहा, कि इन तीनों को तो छोड़ देना आसान था नसरुद्दीन, तुम्हारे लिए क्या करें? तुम क्या जुआ खेल रहे थे? नसरुद्दीन ने पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं, 'विथ हूम'? किसके साथ? क्योंकि वे तीनों तो जा ही चुके थे, बरी हो चुके थे। नसरुद्दीन ने कहा, अकेले भी जुआ अगर खेला जा सकता है, तो जरूर खेल रहा था।

हमारा सारा आचरण दूसरे के सम्बन्ध में है। अकेले का आचरण के कोई अर्थ नहीं है। सत्य बोलें तो किसी से, झूठ बोलें तो किसी से, चोरी करें तो

किसी की, अचोर रहें तो किसी के संबंध में। हमारा सब आचरण का दूसरे से संबंध है। इसलिए ऋषि ने कहा, पहले तो ब्रह्मचर्य सम्पदा है संन्यासी की। ब्रह्मचर्य, दूसरे के साथ ऐसा संबंधित होना है जैसे ईश्वर संबन्धित होता हो। और दूसरी बात कही शांति–भीतर। आचरण तो बाहर है। भीतर–भीतर परम मौन है। सन्नाटा है, शांति है। वहां कोई तरंग भी न उठे, वहां कोई लहर न उठे, वहां जीवन की ऊर्जा है, चेतना है, वह कंपित न हो। ऐसी निष्कंप मौन शांति, जहां हवा का एक झोंका भी नहीं, उसे आंतरिक संपदा कहा है।

आचरण ईश्वर जैसा, अन्तस निर्वाण जैसा है। शून्य, शांत, मौन। ऋषि कहता है–यही संपदा है, जो छीनी नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त जो किसी और चीज को संपदा समझ कर बैठे हैं वे अति दीन हैं, दरिद्र हैं। उनकी दरिद्रता को वे कितना ही छिपाने की कोशिश करें, वह जगह जगह से प्रकट होती है। धन उनके पास होता है, वे स्वयं धनी नहीं हो पाते। क्योंकि धन उनसे किसी भी क्षण छीना जा सकता है। और धन न भी छीना जाय तो भी धन सिर्फ होने का धोखा है। क्योंकि भीतर की दीनता तबतक नहीं मिटती जबतक तनाव न मिट जाय। जब तक अशांति न मिट जाय, तब तक भीतर समृद्धि का जन्म नहीं होता। जबतक इतना भीतर सघन परमात्मा प्रगट न होने लगे कि चारों तरफ उसकी किरणें बिखरने लगें तब तक व्यक्ति सम्राट नहीं है। तब तक व्यक्ति हजार हजार रूपों में गुलाम ही होता है। संन्यासी तो सम्राट है।

स्वामी राम कहा करते थे, एक गरीब फकीर ने घोषणा कर दी थी कि अब मैं मरने के करीब हूं। और लोग बहुत बहुत धन मेरे पास चढ़ाते चले गये हैं, वह इकट्ठा हो गया। मैं उसे किसी गरीब को दे देना चाहता हूं। गांव भर के गरीब घोषणा सुनकर इकट्ठे हो गये। गरीबों की क्या कमी थी। जो नहीं थे गरीब, वे भी अपनी पगड़ी-वगड़ी घर रखकर हाजिर हो गये। फकीर तो चकित हुआ। उसमें कई लोग तो ऐसे थे जो उसको चढ़ा गये थे दान। वे भीड़ में खड़े थे छिपे हुए। सबको अन्दाज था फकीर के पास पैसा तो बहुत होगा, जिन्दगी भर लोग चढ़ाते रहे हैं। था भी बहुत। एक बड़ी झोली में उसने सब भर रखा था। कई हीरे भी थे, मोती भी थे, सब थे। सोने के सिक्के भी थे, वह सब उसने भर रखा था। लेकिन उसने कहा कि भाग जाओ यहां से। मैंने सबसे ज्यादा गरीब आदमी को देने का तय किया है। एक भिखारी ने कहा, लेकिन मुझ से ज्यादा गरीब कौन होगा? मेरे पास कल के लिए भी खाना नहीं है। उसने कहा, मुझे जांच करनी पड़ेगी, तब मैं तय करूगा। इसी बीच सम्राट की सवारी निकली।

हाथी पर सम्राट जा रहा है। फकीर ने चिल्ला कर कहा कि रुक। सम्राट रुका और उसने वह थैली उन भिखारियों की भीड़ के सामने सम्राट के हाथी पर फेंक दी। सम्राट ने कहा, क्या मजाक कर रहे हैं, मने तो सुना आपने सबसे ज्यादा गरीब को देने का तय किया था। फकीर ने कहा, तुमसे ज्यादा गरीब और कौन होगा? क्योंकि यहां जितने लोग खड़े हैं इनकी आशाएं और आकांक्षाएं बहुत बड़ी नहीं हैं। तुम्हारे पास इतना बड़ा साम्राज्य है लेकिन अभी भी तुम्हारी इच्छा का कोई अन्त नहीं है, वह और आगे दौड़ेगी। तुम बड़े से बड़े भिखारी हो, तुम्हारी भिक्षां कभी पूरी न होगी। तुम्हारा भिक्षा-पात्र ऐसा है कि कभी भर न पायेगा। तुम्हीं सबसे बड़े गरीब हो। यह मैं तुम्हें दिये देता हूं।

गरीब कौन है? जिसकी वासनाएं दुष्पूर्ण हैं। अमीर कौन है, जिसकी कोई वासना नहीं। गरीब कौन है? जिसकी मांग का कोई अन्त नहीं। अमीर कौन है, जो कहता है, अब मांगने को कुछ भी न बचा। राम जब अमरीका गये तो वह अपने को बादशाह कहते थे। एक लंगोटी थी पास में, लेकिन कहते थे बादशाह राम। उन्होंने एक किताब लिखी है, उसका नाम है, बादशाह राम के छः हुक्मनामे। एक लंगोटी थी पास और हुक्मनामे बादशाह राम के। अमरीका का प्रेसिडेंट मिलने आया था राम को। और तो उसे सब ठीक लगा, एक बात जरा उसे बेचैन करने लगी। उसने कहा, और सब तो ठीक है, मगर आप अपने को खुद अपने मुंह से कहते हैं, बादशाह राम। क्योंकि वह ऐसा ही कहते थे। वह ऐसा कहते थे कि बादशाह राम कल वहां गये। उसने कहा कि जरा पूछना चाहता हूं कि बादशाहत कौन सी है जिसको आप बात कर रहे हैं। क्या है आपके पास, जिसके आप बादशाह हैं? राम ने कहा, जब तक कुछ भी मेरे पास था, मैं गुलाम था तब तक। क्योंकि जो भी मेरे पास था, वह मेरा मालिक हो गया था। अब मैं बिल्कुल बादशाह हूं, क्योंकि अब मेरी कोई गुलामी न बची। और जब तक मेरे पास कुछ था तब तक मेरी मांग कायम थी, अब मेरी कोई भी मांग नहीं है। अब तुम हीरे जवाहरातों के ढेर लगा दो तो उनपर ऐसे चल सकता हूं जैसे धूल पर चल रहा हूं। अब तो मुझे महलों में ठहरा दो तो मैं ऐसे ठहर सकता हूं जैसे झोंपड़े में सो रहा हूं। अब तुम दुनिया का मुझे बादशाह भी बना दो तो मुझे ऐसा न लगेगा कि 'सम थिंग हैज बीन ऐडेड'। कुछ जुड़ गया नया मुझसे, ऐसा नहीं लगेगा। था ही। सिर्फ आपको पता नहीं था। तो आपको सिंहासन पर बैठ जाने से पता चलेगा। संन्यासी सदा ही संपदा उसे कहता रहा है जो परिपूर्ण तृप्ति से, टोटल फुलफिलमेंट से जन्मती है।

ऋषि कह रहा है, ब्रह्मचर्य आश्रम में, फिर वानप्रस्थ में अध्ययन से फलित सर्व ज्ञान ही संन्यास है। इस देश में हमने आदमी के जीवन को आश्रमों में विभक्त किया था। शायद मनुष्य जाति के इतिहास में हमारा प्रयोग अकेला और अनूठा था। जिसमें हमने आदमी की जिन्दगी को खण्डों में बांटा था। और बड़ी वैज्ञानिक व्यवस्था से बांधा था। अगर सौ वर्ष हम आदमी की औसत उम्र मान लें तो हमने चार टुकड़े तोड़ दिये थे पच्चीस पच्चीस वर्षों के। पच्चीस वर्ष के पहले टुकड़े को हम ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। इन पच्चीस वर्षों में व्यक्ति को अपनी समस्त शक्ति को जगा कर संग्रहीत करना ही लक्ष्य था। इसलिए कि जब वह गृहस्थ बनेगा तो उसके इतनी ऊर्जा होनी चाहिए कि वह जीवन के समस्त भागों को जान पाये। ये भारत के मनीषी दुस्साहसी थे। भगोड़े नहीं थे। ये पच्चीस वर्ष के ब्रह्मचर्य का समय इसलिए था ताकि व्यक्ति इतनी शक्ति संपन्नता से भोग के जीवन में जाय कि भोग को अंतिम किनारे तक छू सके। टु दी आप्टीमम, क्योंकि ऋषियों ने जाना था यह सत्य कि जिस बात को हम पूरा जान लें उससे छुटकारा हो जाता है। अगर पाप से भी छुटकारा चाहिए तो उसे पूरा जान लेना जरूरी है। आधा जिसने जाना है उसके मन में लगाव कायम रह ही जाता है कि पता नहीं, वह जो आधा शेष था, वहां न मालूम क्या होगा ?

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है। पुरोहित आ गये हैं उसे विदा करने को। वे उससे कहते हैं, पश्चात्ताप करो। जो पाप किये हों उनके लिए पश्चात्ताप करो, तो नसरुद्दीन आंख खोलता है और कहता है, पश्चात्ताप मैं कर रहा हूँ। देयर इज रिपेंटेंस इन मी। लेकिन थोड़ा सा फर्क है मुझमें और आप में। मैं उन पापों का पश्चात्ताप कर रहा हूं जो मैं नहीं कर पाया। मन में बड़ी पीड़ा रह गयी कि शायद उनको भी कर लेता तो पता नहीं क्या पा जाता। जो किये उनसे तो कुछ नहीं मिला। लेकिन क्या यह जरूरी है कि जो नहीं किये, उन्हें करता तो उनसे भी मिलता। जो किये उनसे नहीं मिला। लेकिन जो नहीं किये उनमें खजाने नहीं छिपे होंगे, यह कौन मुझे आज मरते क्षण में आश्वासन देगा? पश्चात्ताप कर रहा हूं।

नसरुद्दीन जब सौ वर्ष का हुआ था तो उसकी सौवीं वर्षगांठ मनायी जा रही है। गांव के पत्रकार उसके पास आय थे और उन्होंने नसरुद्दीन से कहा कि अगर तुम्हें दुबारा जिन्दगी मिले तो क्या वे ही भूलें फिर करोगे जो इस जिन्दगी में कीं ? नसरुद्दीन ने कहा वे तो करूंगा ही, जो नहीं कर पाया वे भी करूंगा। एक बात

में फर्क करूंगा कि इस बार मैंने जिन्दगी में भूलें बड़ी देर से शुरू कीं। अगली बार मैं जल्दी शुरू कर दूंगा। पत्रकारों ने पूछा कि तुम्हारी सौ वर्ष लंबी उम्र का राज़ क्या है? तो नसरुद्दीन ने कहा, कि मैंने शराब भी नहीं छुई, मैंने धूम्रपान भी नहीं किया, मैंने किसी लड़की का स्पर्श भी नहीं किया, जबतक कि दस वर्ष का नहीं हो गया। इसके सिवाय और तो मुझे लंबी उम्र का कोई रहस्य मालूम नहीं पड़ता। जब तक कि मैं दस वर्ष का नहीं हो गया। और कहता है, कि अगर दोबारा जिन्दगी मिले तो जो भूलें मैंने देर से शुरू की हैं वह जरा मैं जल्दी शुरू करूंगा। आदमी पछताता है उन पापों के लिए जो उसने नहीं किये। आप उन पापों की याद नहीं करते जो आपने किये। उन पापों की याद मन को घेरे रहती हैं जो आपने नहीं किये।

भारतीय मनीषी बहुत समझदार थे, बुद्धिमान थे, प्रज्ञावान थे। वे कहते थे पच्चीस वर्ष को इकट्ठा कर लो, समस्त शक्ति को जरा भी बहने मत दो। ताकि जब तुम कूदो जीवन के भोग के जगत में, तो तुम्हारी शक्ति से भरे हुए ऊर्जा के तीर तुम्हें वासनाओं के आखिरी तल तक पहुंचा दें। तुम वह सब देख लो जो संसार दिखा सकता है, ताकि संसार से पीठ मोड़ते वक्त मन में एक बार भी पीछे लौटकर देखने का भाव न आये। यह ब्रह्मचर्य आश्रम का अर्थ था। उसका यह अर्थ नहीं था कि लोगों को साधु बनाना है इसलिए ब्रह्मचर्य। नहीं, लोगों को भोग की इतनी स्पष्ट प्रतीति हो जानी चाहिए कि भोग व्यर्थ हो जायं, तभी तो साधुता का जन्म होता है। फिर ब्रह्मचर्य के पच्चीस वर्ष के बाद हम व्यक्ति को भेज देते थे गृहस्थ आश्रम में। अजीब सी बात थी कि पच्चीस साल तक उसे रखते थे दूर वासनाओं के जगत से और पच्चीस साल के बाद बैण्ड बाजे बजाकर उसे वासनाओं के जगत में प्रवेश कराते थे। बड़े गुणी लोग थे, जिन्होंने यह सोचा। उन्होंने सोचा, शक्ति पहले तो संग्रहीत होनी चाहिए। आज अगर पश्चिम में या पूरब में कोई भी व्यक्ति तृप्त नहीं है, काम-वासना से भी तृप्त नहीं है, यद्यपि आज के युग में जितने काम-वासना को तृप्त करने के उपाय हैं, आज के युग में जितना काम-वासना को तृप्त करने का प्रचार है, आज के युग में काम-वासना को जितना प्रदर्शित किया जाता है उतना दुनिया में कभी भी नहीं था। फिर भी कोई आदमी तृप्त नहीं मालूम होता। उसका कारण है कि शक्ति इसके पहले संग्रहीत हो, विसर्जित होनी शुरू हो जाती है। इसके पहले कि फल पके, जड़ें रस को मिट्टी में खोना शुरू कर देती हैं। फल कभी पक नहीं पाता। और जो फल कच्चा ही रह जाता है वह कसे त्याग कर दे वृक्ष का। कच्चे फल कहीं वृक्ष का त्याग करते हैं? पके फल गिरते हैं– चुपचाप गिर जाते हैं। वृक्ष को भी पता नहीं चलता कब गिरा। लेकिन पकने के

लिए ऊर्जा चाहिए । जीवन के अनुभव के पकने के लिए भी ऊर्जा चाहिए । तो पच्चीस वर्ष तक तो हम समस्त रूपों में शक्ति को संग्रहीत और शक्ति को जन्माने और शक्ति को पैदा करने का उपाय करते थे । और एक एक आदमी को हम एक रिजर्वायर बना देते थे जो ऊर्जा से आन्दोलित थे । वह शक्ति संपन्न, भरा हुआ जगत में आता था । ध्यान रहे, जितना शक्तिशाली पुरुष हो उतनी जल्दी वासनाओं से मुक्त हो जाता है । जितना निर्बल पुरुष हो उतनी देर लग जाती है । क्योंकि निर्बल कभी भोग का अनुभव ही नहीं कर पाता । और जिसका अनुभव नहीं, उसका छुटकारा कैसे होगा ? जिसे जाना नहीं, वह व्यर्थ है, यह कैसे जाना जायेगा ? व्यर्थता का ज्ञान तो पूरे जानने से ही उपलब्ध होता है । इसलिए दुनिया जब तक भारतीय मनीषियों द्वारा विभाजित मनुष्य के खण्डों को पुनः स्वीकार नहीं कर लेती, हम मनुष्य को वासनाओं से मुक्त करने में समर्थ न हो सकेंगे ।

ऋषि कहता है, पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य के आवास में जो जाना, गृहस्थ जीवन में जो अनुभव किया – पचास वर्ष की उम्र तक व्यक्ति गृहस्थ रहेगा । पच्चीस वर्ष वह गृहस्थ जीवन का अनुभव करेगा । और जब वह पचास वर्ष होने के करीब होगा तब उसके बेटे आश्रम से लौटने के करीब आयेंगे । उसके बेटे पच्चीस वर्ष के करीब होने लगेंगे । भारत के ऋषि कहते थे कि जब बेटा घर में पत्नी के साथ आ जाय तब भी पिता बच्चे पैदा करता जाय इससे बेहूदी और कोई बात नहीं हो सकती । है भी बेहूदी बात । बेटा जब भोग में उतर जाय, तब बाप भोगना जारी रखे, असंगत है । जरा भी इसमें समझदारी नहीं दिखायी पड़ती । और फिर भी बाप चाहे कि बेटा आदर दे तो मूढ़ता की हद्द हो गयी । कोई वजह नहीं । लगता तो ऐसा है, बेटा आपके कन्धे पर हाथ रखे और ट्विस्ट करे । क्योंकि दोनों की योग्यता बराबर है । बेटा भी वही कर रहा है, बाप भी वही कर रहा है । बेटा भी खड़ा है क्यू में सिनेमा घर के, बाप भी खड़े हैं क्यू में सिनेमा घर के । फिर आदर, फिर श्रद्धा, फिर सम्मान, वह अगर खो जाय तो कसूर किसका है ? नहीं, नियम यह था कि बेटा जिस दिन विवाहित होकर घर आये, उस दिन बाप वानप्रस्थ हो गया, उस दिन मां वानप्रस्थ हो गयी, उसी दिन हो गयी, बात खत्म हो गयी । जब बेटे भोगने के जगत में आ गये तब बाप को त्यागने के जगत में जाना चाहिए । नहीं तो फासला क्या है, फर्क क्या है, भेद क्या है ? पचास वर्ष में व्यक्ति वानप्रस्थ हो जायेगा । वानप्रस्थ का अर्थ है, जिसका मुंह वन की तरफ हो गया । अभी वन में गया नहीं है । अभी जंगल चला नहीं गया, क्योंकि जो बेटे अभी गुरुकुल से वापस आये हैं, बाप की कुछ जिम्मेवारी है कि उनको वह अपने जीवन के अनुभव दे दे । अभी अगर वह जंगल भाग

जाय तो बेटों और बाप के बीच,पीढ़ियों के बीच, जो ज्ञान का संक्रमण होना चाहिए, ट्रांसमीशन होना चाहिए वह नहीं हो पायेगा । अभी बेटे गुरुकुल से आये हैं, अभी वह ज्ञान की बातें लेकर आये हैं, शब्द सीखकर आये हैं, शास्त्र सीख कर आये हैं, शक्ति लेकर आये हैं, अभी चमत्कृत हैं जीवन से, अभी ऊर्जा से भरे हुए हैं युवा अवस्था की, अभी पिता ने पच्चीस वर्षों में जो और जाना है वह सब उसे सिखा दें । पच्चीस वर्ष तक माता और पिता वानप्रस्थ होंगे वन की तरफ जाते हुए । चेहरा उनका जब जंगल की तरफ है, पीठ घर की तरफ हो जायेगी । पच्चीस वर्ष रुकेंगे 'ऐज ए ट्रस्टी', ताकि बेटे को, जो उन्होंने जाना है, सौंप दें । लेकिन जब वे पचहत्तर वर्ष के होंगे तब तक तो बेटों के बेटे गुरुकुल से लौट रहे होंगे । तब उनके रुकने की कोई जरूरत नहीं रही क्योंकि उनके बेटे ही अब अनुभवी पिता हो गये हैं, वे पचास साल के हो गये हैं । अब वे ज्ञान को, अनुभव को दे सकेंगे । अब उनके संन्यास का क्षण आया, अब वे छोड़ दें और जंगल चले जायं । और एक बहुत अद्‌भुत सर्किल हमने निर्मित किया था । ये जो पचहत्तर वर्ष के वृद्ध जन जंगल जायेंगे, ये आने वाले बच्चों के लिए गुरु का काम करेंगे । यह एक सर्किल था हमारा । और ध्यान रहे, हमने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि विद्यार्थी और गुरु के बीच इससे कम उम्र का फासला उचित है । पचास साल की उम्र का फासला जरूरी है । क्योंकि एक तो वृद्ध की सब वासनाएं क्षीण हो गयी होती हैं । केवल वे वृद्ध ही, जिनकी वासनाएं समस्त क्षीण हो गयीं, जो अनुभव से वासनाओं के पार हो गये, अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य में दीक्षित कर सकते हैं, नहीं तो नहीं । कैसे करेंगे ? अभी गुरु खुद गीता में काम शास्त्र छिपा कर पढ़ता हो; फिर ठीक है, फिर बच्चे भी पहचान जाते हैं । पहचानने में देर नहीं लगती । फिर यही गुरु उनको ब्रह्मचर्य की बात करता हो, तो बच्चे देख लेते हैं, सुन लेते हैं लेकिन जान जाते हैं कि ये सब बातें करने की हैं ।

आज तो युनिवर्सिटी में ऐसा होता है– मैं तो दस वर्ष तक युनिवर्सिटी में था– अक्सर ऐसा हो जाता है कि एक ही लड़की के लिए प्रोफेसर भी दीवाना है और लड़के भी दीवाने हैं । भारी प्रतिस्पर्धा हो जाती है । अब ब्रह्मचर्य की बात करने की भी तो जरूरत नहीं रह गयी, शोभा भी नहीं देती । पचास साल का फासला हमने माना था कि विद्यार्थी और गुरु में होना चाहिए, इतना डिस्टेंस कई अर्थों में जरूरी है । एक तो वार्धक्य का अपना सौंदर्य है, अपनी गरिमा है । अगर कोई व्यक्ति सच में ढंग से बूढ़ा हुआ हो तो बुढ़ापे का जो सौन्दर्य है वह किसी भी स्त्री में कभी नहीं होता । क्योंकि जवानी में तो एक उत्तेजना होती है इसलिए सौंदर्य में

शांति नहीं होती, स्निग्धता नहीं होती, चांद जैसा नहीं होता सौंदर्य । और जवानी में तो एक उतावलापन होता है, जल्दी होती है । जल्दी ढल जाती है । जल्दी में कभी भी सौंदर्य नहीं होता । सौंदर्य तो बहुत धीरे से बहने वाली नदी की दशा है और जवानी इतनी ऊर्जा से भरी होती है कि उसे फेंकने के लिए पागल होती है, विक्षिप्त होती है । जवानी कभी भी स्वस्थ नहीं होती । हालांकि हम कहते हैं कि जवान बहुत स्वस्थ होते हैं शरीर से । लेकिन मन से जवानी बहुत अस्वस्थ अवस्था है । बूढ़े ही स्वस्थ हो पाते हैं ।

रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि अगर कोई ठीक से वृद्ध हो, ठीक से वृद्ध होने का मतलब यही है कि भीतर जवानी सरकती न रह जाय और तो कोई अर्थ ही नहीं होता । नहीं तो शरीर बूढ़ा रह जाता और मन जवान हो जाता तब बूढ़े से ज्यादा कुरूप इस जगत में कोई घटना नहीं होती । द मोस्ट अग्लीएस्ट, –जब बूढ़ा शरीर होता है और मन जवानी की तरह बेताब, पागल, रुग्ण और वासनाग्रस्त होता है । यह बड़े मजे की बात है, बच्चे अब भी सुन्दर होते हैं, बूढ़े अब सुन्दर होने बन्द हो गये । कभी मुश्किल से कोई वृद्ध व्यक्ति सुन्दर दिखायी पड़ता है । रवीन्द्रनाथ ने कहा है, जब सचमुच कोई बूढ़ा, जीवन के अनुभव से पक कर सुन्दर वार्धक्य को उपलब्ध होता है तो उसके सिर पर आ गये सफेद बाल ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे गौरीशंकर पर जम गयी शुभ्र बर्फ; शांत शिखर को छूता हुआ, आसमान को छूता हुआ. जहां बादल भी शर्म से झुक जाते हैं और नीचे पड़ जाते हैं ऐसे बूढ़ों को हम कहते थे गुरु । इतना फासला न हो तो गुरु और शिष्य के बीच जो श्रद्धा का जन्म होना चाहिए वह नहीं हो सकता । और फिर यह लोग जो सब जान चुके हैं, यही देने में समर्थ हो सकते हैं ।

आज करीब करीब, जिन्होंने कुछ भी नहीं जाना – शब्द जाने हैं, परीक्षापत्र जाने हैं, सर्टिफिकेट जाने हैं, जिनका अनुभव से कोई सम्बन्ध नहीं वे उनको ज्ञान देते रहते हैं जो करीब करीब उनकी ही मनोदशा में हैं । कोई भेद नहीं है दोनों में और अगर विद्यार्थी थोड़ा होशियार हो तो शिक्षक से ज्यादा जान सकता है आज । पहले यह असंभव था। अक्सर कुछ विद्यार्थी थोड़े होशियार होंगे ही और शिक्षक से थोड़े ज्यादा ही होंगे । क्योंकि शिक्षक की तरफ जानेवाला जो वर्ग है समाज का, वह सबसे कम होशियार वर्ग होता है । उसके कारण हैं, क्योंकि शिक्षक को न तनखाह है ठीक, न कोई सम्मान है । लोग पूछते हैं–अच्छा, मास्टर हो गये । यानी मतलब बेकार हो गये ! आदमी डरता है बताने में कि मास्टर है । इससे तो कॉंस्टेबल कहता तो भी रीढ़ अकड़ जाती कि कांस्टेबल है । मास्टर हैं तो वह ऐसा कहता है कि पिट गये बेकार हो गये,

जिन्दगी बेकार हो गयी। मास्टरों में गंवा दी। उस ओर जाता ही मिडियाकर वर्ग है, मध्यवृत्त वाला वर्ग ही जाता है। और जरा सा भी विद्यार्थी होशियार हो तो शिक्षक पीछे रह जाता है। लेकिन भारत की दृष्टि यह थी कि शिक्षक किसी भी स्थिति में विद्यार्थी से पीछे नहीं रहना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब इतना लम्बा जीवन का अनुभव हो।

ऋषि कह रहा है कि जिन्होंने ब्रह्मचर्य जाना, गृहस्थ जाना, जिन्होंने वानप्रस्थ जाना, इस जानने से ही वे जिस त्याग को उपलब्ध होते हैं उसका नाम संन्यास है। इस जानने से ही। 'दिस वेरी नोइंग लीड्स टु रिननसिएशन'। यह जानना ही संन्यास बन जाता है। जिसने जान लिया जीवन को इतने इतने पहलुओं से वह जीवन से चिपका नहीं रह जाता। वह जान लेता है कि असार को पकड़ कर रखने का क्या प्रयोजन है, तो छूट जाता है। और अंत में समस्त शरीरों का नाश हो जाता है और ब्रह्म रूप अखण्डाकार में प्रतिष्ठा होती है।

मनुष्य के सात शरीर हैं – एक शरीर जो हमें दिखायी पड़ता है, यह है। फिर इसके भीतर और, और, और सात शरीरों की पर्तें हैं। एक शरीर तो भौतिक है जो हमें दिखायी पड़ता है। और सूक्ष्म शरीर हैं जो हमें दिखायी नहीं पड़ते, लेकिन जब कोई योग में प्रवेश करता है तो दिखायी पड़ना शुरू होता है। एक एक आदमी सात पर्तों से घिरा हुआ है, सेवन लेयर्स। ये जो सात शरीर हैं हमारे, जब तक ये सातों के सातों न गिर जायं तब तक अखण्ड ब्रह्माकार स्थिति नहीं बनती। अगर एक शरीर भी बच जाय पीछे तो वह यात्रा जारी रखता है। अगर सातों शरीर हों तो जन्म होता है अलग ढंग से। अगर एक ही शरीर रह जाय तो भी जन्म होता है अलग ढंग से। भौतिक शरीर निर्मित नहीं होता, लेकिन जन्म की यात्रा जारी रहती है। जन्म तो उसी दिन मिटते हैं जिस दिन हमारे भीतर कोई शरीर ही नहीं रहता। लेकिन कब यह घटना घटती है कि कोई शरीर न रह जाय ? यह तभी घटती है, जब भीतर कोई वासना न रह जाय, क्योंकि वासना शरीर को संग्रहीत करती है, क्रिस्टलाइज करती है, इकट्ठा करती है। हमारे भीतर वासनाओं के भी सात तल हैं इसलिए हमारे भीतर सात शरीर हैं। उन सात शरीरों का नाश हो जाता है जब कोई व्यक्ति जानकर जीवन का त्याग कर देता है। तब सातों शरीर भस्मीभूत हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति की अखण्ड ब्रह्म के साथ सत्ता एक हो जाती है। फिर जन्म का कोई उपाय न रहा क्योंकि जन्म लेगा कहां ? जायेगा कहां ? आवागमन की कोई सुविधा न रही। फिर तो प्रतिष्ठा उसमें हो गयी जो सरल है, आकाश की भांति जो फैला है सब ओर। उसके साथ एक होना हो गया। यही क्षण परम अनुभूति और परम आनन्द का क्षण है जब हमें जन्मने

की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि फिर मरने का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब हमें शरीर ग्रहण नहीं करने पड़ते तब हमें शरीरों से पैदा होने वाले कष्ट भी नहीं झेलने पड़ते। और जब इंद्रियां हमें नहीं मिलतीं जब इंद्रियों से जो भ्रांतियां पैदा होतीं हैं वे भी नहीं पैदा होतीं। तब हम शुद्ध चैतंन्य में, शुद्ध सत्य में, शुद्ध अस्तित्व के साथ एक हो जाते हैं। इस एकता का जो ज्ञान है, इस एकता का जो दिशा निर्देश है, इस परम ऐक्य की जो इंगित व्यवस्था है, ऋषि कहता है, यही निर्वाण दर्शन है।

एक बहुत अद्‌भुत बात इस सूत्र में कही है अन्त में। जिसका शिष्य या पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी को उपदेश नहीं करना, ऐसा यह रहस्य है। यह बहुत अजीब लगेगा। इतनी अद्‌भुत बातों के बाद। इतने परम ज्योतिर्मय की ओर इशारे करने के बाद एक बात ऋषि कहता है कि यह ज्ञान ऐसा है कि इसे अपने पुत्र या अपने शिष्य के अतिरिक्त और किसी से मत कहना। उपनिषद् का अर्थ होता है, 'द सीक्रेट डाक्ट्रिन' उपनिषद् का अर्थ होता है गुह्य रहस्य। उपनिषद् शब्द का अर्थ होता है, जिसे गुरु के पास चरणों में बैठकर सुना। रहस्य इतना गुह्य है कि ऐसे ही राह चलते नहीं कहा जाता। रहस्य इतना गुह्य है कि हर किसी से नहीं कहा जाता। बहुत इन्टीमेसी चाहिए, बड़ा आंतरिक संबंध चाहिए। रहस्य ऐसा गुह्य है कि जहां तर्क वितर्क और विवाद चलता हो वहां नहीं कहा जा सकता है। जहां प्रेम की अन्तर्धारा बहती है वहीं कहा जा सकता है। जहां संवाद संभव हो, जहां कम्यूनिकेशन संभव हो, जहां हृदय हृदय से बोल सके-'हार्ट टु हार्ट' वहीं कहना'] —ऋषि ने यह सूचना दी है।

बेटे या शिष्य को भी कहने का कारण है। असल में बेटे से मतलब है, जो इतना अपना हो कि अपनी ही मांस मज्जा मालूम पड़े। जरूरी नहीं है कि वह आपके शरीर से पैदा हुआ हो। यह जरूरी नहीं है। पर यह जरूरी है कि आपको ऐसा लगे कि अगर वह मर जाय तो आपका कोई हिस्सा मर जायगा। कि अगर वह खो जाय तो आपका कोई अंग खो जायेगा। कि वह डूब जाय, नष्ट हो जाय तो आपके हृदय की धड़कनें कुछ नष्ट हो जायेंगी। आप कभी फिर उतने पूरे न होंगे जितने उसके होने से थे। जिसके साथ ऐसी आत्मीयता मालूम हो जो इतना आत्मज मालूम पड़े, उससे कहना। क्योंकि यह रहस्य गुह्य है, या उससे कहना जो शिष्य हो। शिष्य का अर्थ होता है, वन हू इज रेडी टु लर्न, जो सीखने को तैयार है। बहुत कम लोग दुनिया में सीखने को तैयार होते हैं। मुश्किल से। सिखाने की उत्सुकता बहुत आसान है, सीखने की तैयारी बहुत कठिन है। क्योंकि सीखने के लिए झुकना पड़ता है। इस शिष्य शब्द से मुझे कुछ ख्याल आया।

हमारे मुल्क में पांच सौ वर्ष पहले नानक के शब्दों से एक धर्म का जन्म

हुआ जिसको हम कहते हैं सिख । लेकिन सिख केवल शिष्य का पंजाबी रूपांतरण है । शिष्य का पंजाबी रूप है सिख, जो सीखने को तैयार है । इतना ही उसका मतलब है । सिख कोई पंथ नहीं, कोई मजहब नहीं है, जो भी सीखने को तैयार है वही सिख है ।

ऋषि कहता है, यह सीखने की तैयारी न हो अगर तो मत कहना । क्योंकि ये बातें ऐसी हैं कि सीखने को जो तैयार न हो, उससे कहो तो उसके कानों में भी प्रवेश नहीं होगा और खतरा यह है कि वह इनके गलत अर्थ निकाल लेगा, क्योंकि यह रहस्य गुह्य है । यह सीक्रेट है । यह ऐसी बात नहीं है बोलचाल की कि कह दी । यह कहना है सोच समझकर । निश्चित ही हम पूरा शास्त्र देख गये हैं, सोच समझकर कहने जैसा है । स्वेच्छाचार- संन्यास जरा सोच समझकर कहना उससे, जो समझ सके, समझने की जिसकी तैयारी हो । नहीं तो वह समझेगा कि बिल्कुल ठीक । स्वेच्छाचार का मतलब समझेगा लाइसेंस मिल गया । अब कुछ भी करो । और अगर कोई कुछ कहे तो कहना, संन्यासी हैं । क्या समझते हो, स्वेच्छाचार करेंगे ही, संन्यासी जो हैं । हम देख गये हैं पूरा निर्वाण उपनिषद् । जो बातें कही हैं वे निश्चित ऐसी हैं कि ऋषि को यह वक्तव्य पीछे दे ही देना चाहिए कि उससे कहना, जो इतना निकट हो कि मिसअण्डरस्टैंडिग न कर पाये, गलत न समझ पाये । उससे ही कहना, जो सीखने को इतना तैयार हो कि अपनी तरफ से जोड़े न । जो कहा जाय, वही समझे । जो चरणों में बैठकर झुक सके, जो सिर्फ प्रश्न ही न कर रहा हो, जो केवल जवाब ही न चाहता हो, जो समाधान की तलाश में निकला हो, जो समाधि पाना चाहता हो, उससे कहना ।

निर्वाण उपनिषद् समाप्त । ऋषि कहता है, बस यह आखिरी बात कहने की है । जब किसी से कहो, सोच समझकर कहना । इतना ही मुझे कहना है । ऋषि कहता है और निर्वाण उपनिषद् समाप्त हो जाता है । निर्वाण उपनिषद् तो समाप्त हो जाता है, लेकिन निर्वाण, निर्वाण उपनिषद् के समाप्त होने से नहीं मिल जाता । निर्वाण उपनिषद् जहां समाप्त होता है वहीं से निर्वाण की यात्रा शुरू होती है । उपनिषद् समाप्त हो गया, इस आशा के साथ अपनी बात पूरी करता हूं कि आप निर्वाण की यात्रा पर निकलेंगे । और यह भरोसा रखकर मैंने ये बातें कही हैं कि आप सुनने को, समझने को तैयार होकर आये थे । अगर कोई शिष्य के भाव से न आया हो तो उसके कारण मुझे ऋषि से क्षमा मांगनी पड़ेगी । क्योंकि फिर ऋषि के इशारे के विपरीत बात हो गयी । किसी ने अगर मन में विवाद लेकर इन बातों को सुना और समझा हो तो उससे मैं प्रार्थना करूंगा कि वह भूल जाय कि मैंने उससे कुछ भी

कहा । मैंने जैसा कहा है और जो कहा है उसमें अगर रत्ती भर भी अपनी तरफ से जोड़ने का ख्याल आये तो स्मरण रखना कि वह अन्याय होगा । मेरे साथ ही नहीं, जिसने निर्वाण उपनिषद् कहा है, उस ऋषि के साथ भी । यही मानकर मैं चला हूं कि जो यहां इकट्ठे हैं, वे आत्मीय है, 'एंड कम्युनिकेशन इज पासिबल' और संवाद हो सकता है । इसलिए सिर्फ चर्चा नहीं रखी, साथ में आपके ध्यान के गहन प्रयोग रखे । क्योंकि मैं मानता हूं कि चर्चा में वे लोग भी उत्सुक हो जाते हैं जो शब्दों को विलास समझते हैं । चर्चा में वे लोग भी उत्सुक हो जाते हैं जो शब्दों को मनो-रंजन समझते हैं, लेकिन ध्यान में वे लोग उत्सुक नहीं होते । और दिन में तीन बार अथक श्रम करना पड़े ध्यान के लिए तो जो चर्चा में उत्सुक थे वे भाग गये होंगे । भाग जायेंगे । इसलिए ध्यान को अनिवार्य रूप से पीछे जोड़ कर रखा था । और मैं, आप जब मुझे सुनते हैं तब आपकी फिक्र नहीं कर रहा हूं, जब आप ध्यान करते हैं तब आपकी फिक्र करता हूं । आपकी ध्यान करने की चेष्टा ने मुझे भरोसा दिलाया है कि जिनसे मैंने बात कही है वे कहने योग्य थे ।

निर्वाण उपनिषद् समाप्त !

निर्वाण की यात्रा प्रारंभ ! !

* संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास *

संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास

संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में

आचार्यश्री रजनीश

के आध्यात्मिक चिन्तन और विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए

अंग्रेजी में द्वि-मासिक

संन्यास

कलात्मक साज-सज्जा, संग्रहणीय पाठ्य सामग्री

वार्षिक शुल्क : १८ रुपये

- जीवन जागृति केन्द्र : ३१ इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिदबंदर रोड, बम्बई-९
- ए-१ वुडलैंड अपार्टमेंट, पेडर रोड, बम्बई-२६

* संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास संन्यास *

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि

का

मासिक पत्र

युक्रांद

मानसेवी सम्पादक :

अरविन्द कुमार

एक प्रति : १ रुपया * वार्षिक शुल्क : १२ रुपये

देश के कोने-कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता :

अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन : २२५७

'आज मेरे घर प्रीतम आये....'

राजस्थान के प्रवास में व्यस्त संन्यासियों की संकीर्तन मंडली दस-पंदरह हजार की आबादी वाले गांव में भी पहुँच जाती है। हजारों लोग कीर्तन में विभोर होने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं, पूछते हैं एक-दूसरे से–"कौन हैं ये लोग? इनके चेहरे पर ये अलौकिक आनंद हमें कितना प्रभावित करता है? ये संन्यासी सच ही कुछ कह जाते हैं—कर जाते हैं।" और लोगों के भीतर से आत्मा पुकार-पुकार के गाती है–"आज मेरे घर प्रीतम (रजनीश) आये . . ."

पल-पल आनंद की बौछार करने वाले ये संन्यासी एक गाँव में कुछ दिन के लिए ठहरते हैं। संकीर्तन, प्रवचन, नाटक, ध्यान एवं नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। गाँव में से ही प्रभु के चुने हुए सत्य के शोधक मिल जाते हैं, जो संन्यास में दीक्षित होते हैं, और जिनकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

संकीर्तन-मंडली का अगला कार्यक्रम :

संयोजक—स्वामी आनंद विजय C/o पुष्प कटपीस भंडार.
जवाहरगंज, जबलपुर (म. प्र.)

१—नीमच	तारीख	१४ से १६	दिसम्बर ७१
२—मंदसौर	"	१८ से १९	"
३—रतलाम	"	२१ से २३	"
४—इन्दौर	"	२६ से ३०	"
५—भोपाल	"	१ से ४	जनवरी ७२
६—होशंगाबाद	"	६ से ११	"
७—बाबई	"	१२ से १३	"
८—पिपरिया	"	१५ –	"
९—गाडरवारा	"	१७ से १९	"
१०–अमरवाड़ा	"	२१ से २२	"
११–जबलपुर	"	२३ से २६	"
१२–सागर	"	२७ से २८	"

साधना-शिविर

माथेरान

८ जनवरी १९७२ से १६ जनवरी १९७२ तक

आत्मज्ञान एवं ज्ञानतत्त्व की उपलब्धि के लिए लालायित
प्रेमी जिज्ञासुओं के लाभार्थ

आचार्यश्री के सान्निध्य में

आयोजित प्रकृति–स्थली माथेरान के साधना शिविर में सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवाले महानुभाव जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

जीवन जागृति केन्द्र
३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, **बम्बई–९**
फोन : ३३९५६०–३२७६१८

माउंट आबू : ध्यान शिविर

आचार्य श्री रजनीश के सान्निध्य में

इस शिविर में ध्यान के प्रयोग और आध्यात्मिक प्रवचन का कार्यक्रम आयोजित किया गया है

३१ मार्च १९७२ से ८ अप्रैल १९७२ तक

शिविर में सम्मिलित होने की लालसा रखने वाले महानुभाव विस्तृत जानकारी के लिए नीचे लिखे पते पर सम्पर्क स्थापित करें :

जीवन जागृति केन्द्र
म्युनिसिपल स्कूल के सामने
खाड़िया चार रास्ता,
अहमदाबाद–१ **फोन : २४०८३**

मुद्रक प्रकाशक : **ईश्वरलाल एन. शाह,** जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १

(कवर पेज २ से आगे)

* Earthen Lamps	4-50
* Path to Self Realizat on	4-00
* Philosophy of Non-Violence	0-80
* Who am I?	3-00
* Wings of Love & Randum Thoughts	3-50
* Mysteries Life:& Death	4-00

Critical Studies on Acharyaji

* Acharya Rajneesh : A Glimpse	1-25
* Acharya Rajneesh : The Mystic of feeling	20-00

मराठी साहित्य

* पथ प्रदीप	८–००
* प्रेम पुष्प	३–५०
* साधनापथ	३–००
* क्रांतिबीज	२–५०
* सिंहनाद	२–००
* प्रेमाचे पंख	०–७५
* अहिंसादर्शन	०–५०
* अमृतकण	०–५०

ગુજરાતી સાહિત્ય રૂા. પૈ.

* અન્તર્યાત્રા	૫-૦૦
* સંભોગથી સમાધિ તરફ	૪-૦૦
* માટીના દિવા	૩-૫૦
* પંથના પ્રદીપ	૩-૦૦
* સાધના પથ	૩-૦૦
* ક્રાંતિબીજ (ભાષા હિન્દી)	૨-૫૦
* અજ્ઞાત પ્રતિ	૨-૦૦
* નવા સંકેત	૧–૭૫
* સત્યના અજ્ઞાત સાગરનું આમંત્રણ	૧–૫૦
* સૂર્ય તરફનું ઉડ્ડયન	૧–૦૦
* ગીતા પ્રવચન	૧–૦૦
* ધ્યાન	૦–૫૦
* પ્રેમ	૦–૫૦
* અભિનવ સંન્યાસ	૦–૫૦
* જીવન અને મૃત્યુ	૧–૦૦
* અમૃતકણ	૦–૫૦
* અહિંસાદર્શન	૦–૫૦
* કેટલીક જ્યોતિર્મય ક્ષણ	૦–૭૫
* નવા મનુષ્યના જન્મની દિશા	૦–૭૫
* તરૂણ વિદ્રોહ	૦–૫૦
* પ્રેમની પાંખે	૦–૭૫
* ભ્રાંત સમાજવાદ	૦–૩૦
* ધર્મ અને રાજકારણ	૦–૪૦
* અતીતની આલોચના, ભાવિનું ચિંતન	૦–૩૫
* ગાંધીમાં ડોકિયું અને સમાજવાદ	૦-૩૫
* હું કોણ છું	૩–૦૦
* સંકલ્પ	૦–૭૫
* પરિવાર	૦–૭૫
* સત્યમ્ શિવમ્ સુંદરમ્	૦–૬૦
* ધર્મ વિચાર નહિ ઉપચાર	૦–૬૦
* વ્યસ્તજીવનમાં ઈશ્વરનીખોજ	૦–૫૦
* ક્રાંતિની વૈજ્ઞાનિક પ્રક્રિયા	૦–૬૦

पुस्तकें मिलने का पता

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९.

फोन : ३३९५६०–३२७६१८

* A-1 Woodland Apt., Peddar Rd., Bombay 26. Phone No. 382184

ज्योति शिखा

जन्मोत्सव अंक

२३

दिसम्बर १९७१

जीवन जागृति केन्द्र